पृथ्वीराज रासो में कथानक-रूढ़ियाँ

पृथ्वीराज रासो
में
कथानक-रूढ़ियाँ

ब्रजविलास श्रीवास्तव

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

मूल्य तीन रुपये

प्रथम संस्करण, १९५५

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई के लिए श्री गोपीनाथ सेठ,
नवीन प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित ।

प्रख्यात प्राच्यविद्याविद्

स्वर्गीय मॉरिस ब्लूमफील्ड

तथा

आचार्य डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

को

भूमिका

श्री व्रजविलास जी की पुस्तक 'पृथ्वीराज रासो की कथानक-रूढ़ियाँ' प्रकाशित होते देख मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। कथानक-रूढ़ियों या कथानक-गत 'अभिप्रायों' के अध्ययन का हिन्दी में सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है। जब से यूरोप के विद्वानों का ध्यान संसार के कथा-साहित्य पर गया है तब से इस श्रेणी के साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ हुआ है। भारतवर्ष के विशाल कथा-साहित्य के प्राचीन और नवीन रूपों के साथ संसार-प्रचलित कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन का सूत्रपात सुप्रसिद्ध जर्मन पंडित बेनफी ने किया था। वेबर-जैसे पण्डित को भी भारतीय कथाओं के व्यापक प्रचार से आश्चर्य हुआ था। विण्टरनित्स ने 'सम प्रॉब्लम्स ऑफ इण्डियन लिटरेचर' में इन कथाओं के संसार-व्यापी प्रचार की चर्चा की है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए कथानक-रूढ़ियों का जम के उपयोग किया गया है। विभिन्न पण्डितों ने भारतीय कथाओं में अधिकता से प्रयुक्त होने वाले अभिप्रायों या रूढ़ियों का विश्लेषण किया और यथा-सम्भव इनके प्रयोग से कथा के मूल उत्स को पकड़ने का प्रयत्न किया। यह विश्वास किया जाने लगा कि हाथी या शृगाल की चतुरता का अभिप्राय देखते ही आँख मूँदकर बताया जा सकता है कि यह कहानी भारतीय है। इस प्रकार जहाँ तक भारतीय साहित्य का प्रश्न है, अभिजात साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से ही कथानक-रूढ़ियों की वैज्ञानिक विवेचना का सूत्रपात हुआ; किन्तु ज्यों-ज्यों इस विषय का विश्लेषण-विवेचन शुरू हुआ त्यों-त्यों इसकी व्यापक उपयोगिता और महत्त्व स्पष्ट होते गए। भारतीय कथानक-रूढ़ियों का विशेष रूप से अध्ययन मॉरिस ब्लूमफील्ड, और पेंजर आदि ने किया। हिन्दी में इस दृष्टि से शायद कोई प्रयत्न अब तक नहीं हुआ। आज से कई वर्ष पहले मैंने साहित्य के पंडितों और विद्यार्थियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और मुझे प्रसन्नता है कि श्री व्रजविलास ने पृथ्वीराज रासो की कथानक-रूढ़ियों का यह विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। कथानक-रूढ़ियों का क्षेत्र अब केवल अभिजात साहित्य तक ही सीमित नहीं रह गया है; अब उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है।

मुझे और भी प्रसन्नता है कि श्री ब्रजविलास अपने अध्ययन को और भी विस्तृत क्षेत्र में ले जा रहे हैं। अस्तु।

कथानक-रूढ़ियों का अध्ययन केवल साहित्यिक मनोविनोद नहीं है। अब यह सम्पूर्ण मनुष्य को समझने के प्रधान उपकरणों में गिना जाने लगा है। आज का मनुष्य यद्यपि अपनी आदिम अवस्था पार कर आया है परन्तु उसके वर्तमान रूप में आदिम अवस्था के जीवन का महत्त्वपूर्ण योग है। इस तथ्य को मनोविज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान और समाज-विज्ञान ने स्वीकार किया है। आज के जटिल साहित्यालोचन-शास्त्र को भी आदिम मनुष्य के सौन्दर्य-बोध और अभि-व्यक्तियों के माध्यम से समझने का प्रयत्न होने लगा है। हमारी रससिक्त कथाओं की भी एक विकास-परम्परा है। उनका बीज भी आदिम जातियों में प्रचलित कथानक-रूढ़ियों में खोजा जा सकता है।

यूरोप में अट्ठारहवीं शताब्दी से ही आदिम जातियों के 'साहित्य' का महत्त्व अनुभव किया जाने लगा था। जैसे-जैसे नये-नये देशों का आविष्कार हुआ और नई-नई जातियों से परिचय बढ़ता गया वैसे-वैसे उनके आचार-विचार रीति-नीति और विश्वासों तथा उनमें प्रचलित पौराणिक कथाओं से भी यूरोप का परिचय बढ़ता गया। यूरोप ने पहली बार बड़े आश्चर्य से देखा कि संसार की परस्पर-विच्छिन्न नाना जातियों में प्रचलित आदिम विश्वासों और उन पर आधारित संस्कृतियों की उपरली सतह पर जितनी भी विविधताएँ क्यों न हों, मूल में सर्वत्र एक ही 'अभिप्राय' या 'मोटिफ़' काम कर रहे हैं। इस जानकारी ने यूरोप के विचारशील मनीषियों के निकट यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी कि नाना जातियों में विभक्त मनुष्य वस्तुतः एक है। मनुष्य का मस्तिष्क मूलतः सर्वत्र एक ही ढंग से काम करता है। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस समानता की उपलब्धि ने अभिजात साहित्य को भी खूब प्रभावित किया और उस काल में इस प्रकार की अनेक पुस्तकें लिखी गईं जिनका प्रतिपाद्य यह था कि मनुष्य आदिम अवस्था में अधिक शुद्ध और पवित्र था और सभ्यता के सम्पर्क में आकर वह क्रमशः भ्रष्ट और मलिनचेता हो गया है। सेंट पायरे के 'पाल एट विर्जिनी' (१७८८) को इस श्रेणी की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ बताया जाता है। जो हो, आदिम जातियों के मौखिक 'साहित्य' के संकलन ने अट्ठारहवीं शताब्दी के यूरोप में निस्सन्देह मानवता के महान् विश्वास को बहुत अधिक बल दिया और उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप के दुर्दम्य आदर्शवादी मनस्वियों को नया तत्त्ववाद दिया। जातियों (रेसिज़), सम्प्रदायों, मानव मंडलियों (एथ्निक ग्रुप्स) और राष्ट्रीयताओं के अन्तराल में मनुष्य सर्वत्र एक है, उसके प्रेम और द्वेष

करने का ढंग एक है, उसके उत्साहित और हतोत्साह होने की प्रक्रिया एक है—इस विश्वास ने 'मानवीय समानता' के महान् सिद्धान्त को जन्म दिया, जो आगे क्रमशः निखरता गया। इस प्रकार आदिम जातियों के साहित्य और रीति-नीति के अध्ययन ने मनुष्य के सामूहिक मंगल का मार्ग प्रशस्त किया।

अनुन्नत आदिम जातियों के विश्वासों के अध्ययन से उन्नत समझी जाने वाली जातियों के अनेक पौराणिक आख्यानों का रहस्य प्रकट होता है और कई बार क्रमबद्ध दर्शनों के मूलभूत विचार भी आसानी से समझ में आ जाते हैं। भारतवर्ष के मध्यप्रदेश और बिहार-उड़ीसा में बसी हुई आदिम जातियों की सृष्टि-प्रक्रिया विषयक कथाओं के 'अभिप्रायों' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इन कथाओं के सम्मुख प्रथम पुरुष और प्रथम स्त्री के आविर्भाव के विषय में एक ही प्रधान समस्या बनी हुई है। यदि भगवान् ने एक ही स्थान पर दो व्यक्ति पैदा किए—एक पुरुष और एक स्त्री—तो ये भाई-बहन हुए। इनका सम्बन्ध सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से अनुचित है। इस अनौचित्य को ढंकने के लिए कथाओं में जटिलता लाई गई है। कभी दोनों अलग शीतला रोग से आक्रान्त होकर एक-दूसरे को नहीं पहचानते, कभी अन्धकार में उनका मिलन हो जाता है, कभी प्राकृतिक विपर्यय से दोनों अलग हो जाते हैं, और फिर मिलते हैं इत्यादि। कभी भगवान् पुरुष के रूप में रहकर एक स्त्री की सृष्टि करता है, या फिर वह पराशक्ति (स्त्री) के रूप में रहकर पुरुष की सृष्टि करता है। दोनों ही अवस्था में सामाजिक विधि-निषेध मार्ग-रोध करते हैं। इस प्रकार कहानी में जटिलता आ जाती है। कभी-कभी जटिलता नहीं भी आती। जहाँ वह नहीं आती वहाँ वह अधिक आदिम होती है। हिन्दू पुराणों में दोनों ही प्रकार के कथानक मिल जाते हैं। अनेक पुराणों में कथा अत्यन्त सहज है, परन्तु अनेक पुराणों में उसमें जटिलता आ गई है। क्रमशः उस दार्शनिक सिद्धान्त का जन्म होता है जहाँ परम पुरुष स्वयं अपने आपको ही दो भागों में विभक्त कर लेता है और इस प्रकार कथंचित् विधि-निषेध के दारुण जाल से छुटकारा मिलता है। सब समय छुटकारा भी नहीं मिलता। सब प्रकार से अचिन्तनीय अनादि माया की कल्पना करके इस समस्या से राहत खोजने का प्रयत्न होता है। शाक्त पुराणों में शक्ति ने ही शिव और ब्रह्मा आदि को उत्पन्न किया था, ऐसा बताया गया है। कबीरपंथी बीजक में उसका उपहास करने के उद्देश्य से दूसरी रमैनी में ही कहा गया है कि

तब बरम्हा पूछल महतारी। 'को तोर पुरुष केकरि तुम नारी'।
'हम-तुम तुम-हम और न कोई। तुम मोर पुरुष तोहर हम जोई'

बाप पूत की नारि एक, एकै माय बियाय।
ऐस सपूत न देखिया, बापहिं चीन्हे धाय॥

परन्तु उपहास करने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता और अनेक प्रकार की 'धोखा ब्रह्म' और 'ठगिनियां माया' की कल्पना करने के बाद भी समस्या जहाँ-की-तहाँ रह जाती है। हिन्दू दर्शनों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने का यत्न किया है। यही कहानी संसार के अन्य देशों के पुराणों और दर्शनों की भी है। अस्तु।

यद्यपि 'लोक साहित्य'—विशेषकर आदिम जातियों का साहित्य—दीर्घकाल से यूरोप के विद्वानों का चित्त-मंथन कर रहा है और उसके परिचय से यूरोपीय मनीषियों ने कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त स्थिर किए हैं, परन्तु दीर्घकाल तक अभिजात साहित्य को समझने में इसका कोई उपयोग नहीं किया गया। अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में और उसके पश्चात् इंगलैण्ड और अन्य यूरोपीय देशों में सर्जनात्मक साहित्य पर तो निस्संन्देह इस श्रेणी के साहित्य का प्रभाव पड़ा है (इंगलैण्ड की रोमान्टिक भाव-धारा के गठन में भी इस श्रेणी के साहित्य का हाथ बताया जाता है), परन्तु अभिजात साहित्य के काव्य-रूपों, अलंकृत कथाओं, निजन्धरी कथाओं की कथानक-रूढ़ियों और व्यञ्जक अभिप्रायों को समझने के लिए इनका बहुत कम उपयोग किया गया है।

जिन देशों में यूरोपीय साहित्य के सम्पर्क में आने के कारण नवजागृति आई, उनमें तो स्वभावतः यह प्रयत्न देर से हुआ। संसार के कितने ही नवजाग्रत देशों में आज भी यह चेतना नहीं आ पाई है। यह अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि भारतवर्ष में यह चेतना आ गई है और वह क्रमशः सुश्रृंखल और क्रमबद्ध अध्ययन का रूप ग्रहण करती जा रही है। परन्तु अपने अभिजात साहित्य के अध्ययन के लिए इस श्रेणी के साहित्य का यथोचित उपयोग नहीं हुआ। आज संसार के अनेक अन्वेषक विद्वानों द्वारा संगृहीत सामग्री की मात्रा पर्याप्त है। हिन्दी में अभी यह कार्य आरम्भ ही हुआ है; अनेक क्षेत्रों की विश्वसनीय सामग्री संकलित की जा रही है और कुछ की की भी जा चुकी है। यदि इस सामग्री का उपयोग तुलनामूलक आलोचनात्मक साहित्यिक अध्ययन के उद्देश्य से किया जाय तो निस्सन्देह भारतीय काव्य-रूपों और कथानक-रूपों के अध्ययन में सहायता मिल सकती है। अंग्रेजी में इस दृष्टि से कुछ विद्वानों ने इस शताब्दी में कार्य किया है। एम० एफ० ए० मांटेग्यू ने बताया है कि इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन का सर्वोत्तम प्रयास एच० एम० चिडविक और एन० के चिडविक द्वारा लिखित 'द ग्रोथ ऑफ लिटरेचर' नामक अंग्रेजी ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ

में अब तक की उपलब्ध सभी सामग्री का उपयोग नहीं किया गया है तथापि यह ठीक दिशा में ठीक प्रयत्न है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप यूरोपीय और भारतीय साहित्य के अत्यन्त जटिल आधुनिक रूप का रहस्य समझा जा सका है। चिडविक बन्धुओं का दावा है कि आधुनिक साहित्य के जटिलतम कथा-वस्तु वाले उपन्यासों के सभी तत्त्व अपने विशुद्ध रूप में लोक-साहित्य में मिल जाते हैं। जिन मानव-मण्डलियों में ये तत्त्व विशुद्ध या आदिम रूप में प्राप्त होते हैं, उनकी सांस्कृतिक परम्परा बहुत उलझी हुई नहीं होती, उनका संगठन ठोस होता है और विचार-शृंखला सहज ही समझ में आने लायक होती है। इसीलिए उनकी कहानियाँ मानव-मस्तिष्क के सहज रूप को समझने में सहायक होती हैं। यही कारण है कि आदिम जातियों के कथानकों के अध्ययन से आधुनिक साहित्य के अध्ययन का मार्ग सुगम हो जाता है। हम कथाकार के मानसिक उतार-चढ़ाव और बढ़ाव को अधिक गाढ़ भाव से उपलब्ध कर सकते हैं। इस प्रकार साहित्य-रूपों के वर्तमान जटिल विधान को समझने में यह 'साहित्य' सहायता पहुँचा रहा है।

अपने देश के विविध 'अभिप्रायों' को समझने के सैकड़ों साधन हमारे पास हैं। नाट्यशास्त्र, पंचतन्त्र और कथासरित्सागर आदि को विद्वानों ने इस दृष्टि से बहुत उपयोगी पाया है। मेरा विश्वास है कि पृथ्वीराज रासो भी इस दृष्टि से पर्याप्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। और भी अनेक ग्रन्थ हैं। श्री ब्रजविलास जी ने अपने अध्ययन के लिए हिन्दी के प्राचीन काव्य पृथ्वीराज रासो को चुना है। उन्होंने बड़े परिश्रम से रासो की कथानक-रूढ़ियों का विश्लेषण किया है, लोक साहित्य और अभिजात साहित्य से उसकी समानान्तर रूढ़ियों को मिलाने का प्रयत्न किया है और ऐसे निष्कर्ष निकाले हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। जैसा कि आरम्भ में ही बताया गया है, कथानक-रूढ़ियों की दृष्टि से अपने साहित्य को देखने का यह प्रथम प्रयास है। श्री ब्रजविलास जी के इस निबन्ध को मैं बहुत महत्त्वपूर्ण समझता हूँ, इसलिए नहीं कि इसमें जो बातें कही गई हैं, वे अन्तिम और अखण्डच हैं बल्कि इसलिए कि इससे साहित्य के अध्ययन की एक नई दिशा को इंगित मिलता है। मेरी हार्दिक शुभ कामना उनके साथ है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

काशी
२२-३-५५

क्रम

१

पृथ्वीराज रासो और ऐतिहासिक काव्य-परम्परा

चन्द-कृत 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी-साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है और इसे हिन्दी का आदिमहाकाव्य माना जाता है; किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ होते हुए भी अनेक कारणों से यह ग्रन्थ प्रारम्भ से ही विद्वानों के विवाद का विषय बन गया है। विवाद भी रासो के साहित्यिक महत्त्व के सम्बन्ध में उतना नहीं, जितना उसकी प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में है। ग्रन्थ में हिन्दुओं के अन्तिम सम्राट् पृथ्वीराज का चरित वर्णित होने के कारण प्रारम्भ में विद्वानों को इससे पृथ्वीराज तथा उसके सम्पर्क में आने वाले राजाओं के बारे में महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होने की आशा थी। बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी ने इसी दृष्टि से इसका प्रकाशन प्रारम्भ किया। वस्तुतः यह काल ही ऐतिहासिक शोध का काल था; अतः इस काल में प्राप्त ग्रन्थों का महत्त्व इसी दृष्टि से आँका गया और जो ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं दिखलाई पड़ा उसे छोड़ दिया गया। 'पृथ्वीराज रासो' का प्रकाशन भी बाद में इसीलिए बन्द कर दिया गया। सन् १८७६ में डॉ० बूलर को पृथ्वीराज के जीवन से सम्बन्धित 'पृथ्वीराज-विजय' नामक संस्कृत-काव्य काश्मीर में मिल गया। ऐतिहासिक दृष्टि से 'रासो' और 'पृथ्वीराज-विजय' का तुलनात्मक अध्ययन करने पर 'पृथ्वीराज विजय' अधिक महत्त्वपूर्ण दिखलाई पड़ा, क्योंकि उसमें उल्लिखित घटनाएँ, तिथियाँ तथा नामादि पृथ्वीराज से सम्बन्धित प्रशस्तियों और शिला-लेखों से मिल जाते थे, जबकि रासो की घटनाओं, तिथियों आदि का मेल उन प्रशस्तियों और लेखों से नहीं बैठता था। फलस्वरूप डॉ० बूलर की सम्मति पर रायल एशियाटिक सोसायटी ने रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया।

यद्यपि 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में डॉ० बूलर के पूर्व ही जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास जी अपना सन्देह व्यक्त कर चुके थे, किन्तु विद्वानों ने उस समय उस पर उतना ध्यान नहीं दिया

था। रायल एशियाटिक में डॉ० बूलर का पत्र प्रकाशित होने के बाद ही विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। इस सम्बन्ध में डॉ० बूलर ने रायल एशियाटिक को लिखा था कि "पृथ्वीराज-विजय का कर्त्ता निस्सन्देह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था। वह सम्भवतः काश्मीरी था और एक अच्छा कवि तथा पण्डित था। उसका लिखा हुआ चौहानों का वृत्तान्त चन्द के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०३० तथा वि० सं० १२२६ के शिला-लेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य' में पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है, वही उक्त लेखों में भी मिलती है और उसमें लिखी हुई घटनाएँ दूसरे साधनों अर्थात् मालवा और गुजरात के शिला-लेखों से मिल जाती हैं।" अतः "मुझे इस काल के इतिहास के संशोधन की बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मैं समझता हूँ कि रासो का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय तो अच्छा हो। वह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने बहुत काल पहले प्रकट किया था। 'पृथ्वीराज-विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के बन्दीराज अर्थात् मुख्य भाट का नाम पृथ्वीभट्ट था न कि चन्द बरदाई।"[1]

इसके बाद तो 'पृथ्वीराज रासो' अनेक इतिहास और पुरातत्त्ववेत्ताओं के आक्रमण का विषय बन गया। इस दृष्टि से रासो का मूल्यांकन करने वाले अधिकांश विद्वानों ने उसे अप्रामाणिक और अनैतिहासिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया। रासो की सबसे अधिक ऐतिहासिक चीर-फाड़ महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने की। नाम, वंशावली, वंशोत्पत्ति तथा प्रमुख घटनाओं आदि पर विस्तार से विचार करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "पृथ्वीराज रासो बिलकुल अनैतिहासिक ग्रन्थ है। उसमें चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध की कथा, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहन, पुत्र और रानियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत-सी घटनाओं के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ तथा सामन्तों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं; कुछ सुनी-सुनाई बातों के आधार पर उक्त बृहत् काव्य की रचना की गई है। यदि 'पृथ्वीराज रासो' पृथ्वीराज के समय में लिखा गया होता तो इतनी बड़ी अशुद्धियों का होना असम्भव था। भाषा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ प्राचीन नहीं दीखता।"[2] ओझा जी के मत से "वस्तुतः

---

१. देखिए, 'कोशोत्सव स्मारक संग्रह', पृ० ३०-३१। नागरी प्रचारणी सभा।

२. 'कोशोत्सव स्मारक संग्रह'—नागरी प्रचारणी सभा, पृ० ६५।

'पृथ्वीराज रासो' वि० सं० १६०० के आस-पास लिखा गया।"[1] ओझा जी के इस निष्कर्ष का आधार यह है कि महाराजा कुम्भकर्ण द्वारा वि० सं० १५१७ में प्रतिष्ठापित कुंभलगढ़ किले के मन्दिर में जो पाँच शिलाओं पर महाराजा कुम्भकर्ण द्वारा खुदवाया हुआ विस्तृत लेख है, उसमें मेवाड़ के उस समय तक के राजाओं का बहुत-कुछ वृत्तान्त है, किन्तु उसमें समरसिंह और पृथ्वीराज की बहन पृथा के विवाह की चर्चा नहीं है। परन्तु वि० सं० १७३२ में महाराजा राजसिंह द्वारा राजसमुद्र तालाब के नौचौकी बाँध पर खुदवाये गए 'प्रशस्ति-महाकाव्य' में समरसिंह और पृथा के विवाह की चर्चा तो है ही, इसके साथ ही उसके तीसरे सर्ग में लिखा है कि समरसिंह पृथ्वीराज की सहायतार्थ सहाबुद्दीन से ससैन्य युद्ध करता हुआ मारा गया और इस युद्ध का वृत्तान्त भाषा के रासो-ग्रन्थ में विस्तार से लिखा है।[2] अतः "रासो की रचना सं० १५१७ और सं० १७३२ के बीच किसी समय हुई होगी। वि० सं० १६४२ की पृथ्वीराज रासो की सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति मिली है, इसलिए उसका वि० सं० १५१७ और १६४२ के बीच अर्थात् १६०० के आस-पास बनना अनुमान किया जा सकता है।"[3]

किन्तु मोतीलाल मेनारिया के अनुसार जिस प्रति को १६४२ की लिखी मानकर डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा प्रभृति इतिहासवेत्ता रासो का रचना-काल सं० १६०० के आस-पास निश्चित करने को बाधित हुए हैं वह सं० १६४२ की नहीं, बल्कि १८७६ की लिखी हुई है।[4] इस प्रकार मेनारिया जी ने

१. 'कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह', पृ० ६५।

२. ततः समरसिंहाख्यः पृथ्वीराजस्य भूपतेः।
पृथाख्याया भगिन्यास्तु पतिरित्यतिहार्दत ॥२४॥
गोरी साहिब दीनेन गज्जनीशेन संगरे।
कुर्वतोऽखर्वगर्वस्य महासामंतशोभितः ॥२५॥
दिल्लीश्वरस्य चोहान नाथस्यास्य सहायकृत।
स द्वादश सहस्रैस्ववीराणा सहितो रणे ॥२६॥
बध्वा गोरीपतिं दैवात् स्वर्यातः सूर्यबिंबभित।
भाषारासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥२७॥

'राजप्रशस्ति महाकाव्य', सर्ग ३

३. 'कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह', पृ० ६२।

४. 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल', 'विशाल भारत', अक्टूबर १९४६, पृ० २३७।

यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' के आस-पास ही किसी समय रासो की रचना हुई है। मेनारिया जी के अनुसार 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' से पूर्व रासो का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। "राज-प्रशस्ति के लिए इतिहास-सामग्री एकत्र करवाने में महाराणा राजसिंह ने बहुत व्यय किया था और बहुत दूर-दूर तक खोज करवाई थी—इसी समय चन्द का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है।" रासो को उस व्यक्ति ने अपने नाम से न प्रचारित करके चन्द के नाम से इसलिए प्रचारित किया कि "यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिए अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़तीं, अतः चन्द-रचित बतलाकर उसने सारे झगड़े का अन्त कर दिया। चन्द का नाम लोक-प्रचलित था ही, लोगों को उसकी बातों पर विश्वास हो गया।" अतः मेनारिया जी रासो का रचना-काल सं० १७०६ (यह मानने पर कि 'राजप्रशस्ति महाकाव्य' के लिखे जाने के पूर्व सामग्री एकत्र कराने में भी समय लगा होगा) से आगे ले जाना 'इतिहास और अनुमान दोनों का गला घोंटना,' समझते हैं।[१] यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि रासो का सर्वप्रथम उल्लेख राज-प्रशस्ति से भी पूर्व सं० १७०५ में लिखे गए दलपति मिश्र के 'जसवंत उद्योग' नामक ऐतिहासिक काव्य में मिलता है :

> संयोगिता कुमारिका वयों नहीं चौहानु
> तहीं पिथौरा कहं दयौ राइ अमैजिय दानु ॥१२॥
> रासौ पृथ्वीराज को तहाँ बहुत विस्तारु
> मैं वररायौ संक्षेप ही सकल कथा को सारु ॥१३॥

इसके अतिरिक्त सं० १६६७ की लिखी लघु संस्करण की एक पूर्ण प्रति भी नाहटा जी को प्राप्त हुई है और नाहटा जी का कहना है कि उन्हें तीन प्रतियों का पता चला है जिनमें एक के उद्धारकर्ता कछवाहा चन्द्रसिंह निर्णीत हो चुके हैं, जिनके संस्करण का समय सं० १६४०-५० के लगभग निश्चित हुआ है।[२]

यह तो रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में उठने वाले विवाद का एक पक्ष है जिसके समर्थक श्री श्यामलदास, मुरारिदान, डॉ० बूलर, गौरीशंकर

१. देखिए 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल'—'विशाल भारत', अक्तूबर, १९४६, पृ० २३७।

२. देखिए 'पृथ्वीराज रासो का रचना-काल'—श्री अगरचन्द नाहटा, 'विशाल भारत', अक्तूबर, १९४६, पृ० ३९५।

हीराचन्द ओझा, मुं० देवीप्रसाद तथा मोतीलाल मेनारिया प्रभृति विद्वान् हैं। ये विद्वान् ऐतिहासिकता के आधार पर रासो को १६वीं या १७वीं शताब्दी का लिखा हुआ अप्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। दूसरी ओर श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या, डॉ० श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु आदि ने ऐतिहासिकता के आधार पर ही इसे बिलकुल प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनके विचार से रासो का वर्तमान बृहद् रूपान्तर सर्वथा प्रामाणिक है और उसमें वर्णित घटनाएँ संवत्, वंशावली आदि बिलकुल सही हैं। इन संवतों और घटनाओं की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए पण्ड्या जी के प्रयत्न से एक अनन्द संवत् और पृथ्वीराज से सम्बन्धित अनेक पट्टे-परवानों की उपलब्धि भी इन्हें हुई है। पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में उठने वाले विवाद की ये दो सीमाएँ हैं। ध्यान देने की बात यह है कि दोनों पक्षों के विद्वान् ऐतिहासिकता के आधार पर ही रासो को प्रामाणिक अथवा अप्रामाणिक सिद्ध करना चाहते हैं। इन विद्वानों का सम्पूर्ण रासो को ऐतिहासिकता की कसौटी पर कसने का प्रयास यह सिद्ध करता है कि ये रासो को किसी एक काल की और एक व्यक्ति की रचना मानते हैं चाहे वह पृथ्वीराज के समकालीन माने जाने वाले चन्द हों अथवा चन्द के नाम पर लिखने वाले १६वीं-१७वीं शताब्दी के कोई भट्ट। साथ ही इनकी ऐतिहासिकता की छान-बीन यह भी प्रमाणित करती है कि ये विद्वान् रासो को काव्य-ग्रन्थ नहीं बल्कि छन्दोबद्ध इतिहास-ग्रन्थ मानते हैं। सम्भव है, इनकी यह धारणा हो कि 'ऐतिहासिक काव्य' की संज्ञा से विभूषित तथा ऐतिहासिक चरितनायकों के जीवन से सम्बद्ध भारतीय काव्यों में काव्यात्मक ढंग से ऐतिहासिक तथ्यों की उद्धरणी रहती है और इन काव्यों के रचयिता ऐतिहासिक चरितों के जीवन से सम्बद्ध वास्तविक घटनाओं को ही अपने काव्य का आधार बनाते हैं। इनकी दृष्टि में तथाकथित ऐतिहासिक काव्यों के लेखकों का उपजीव्य कल्पना नहीं, तथ्य होता है अर्थात् उनका वस्तु-चयन और वर्णन-पद्धति काव्यात्मक नहीं, तथ्यात्मक होती है। यह धारणा कहाँ तक सत्य पर आधारित है, इस सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

जब से पृथ्वीराज रासो की विभिन्न प्रकार की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, तब से रासो-सम्बन्धी विवाद ने एक नया रूप धारण कर लिया है। अब तक प्राप्त रासो की हस्तलिखित प्रतियों का अध्ययन करने वाले विद्वानों का कहना है कि वे चार प्रकार की हैं जिन्हें चार रूपान्तर कह सकते हैं। ये चार रूपान्तर निम्नलिखित हैं—

१. बृहद् रूपान्तर—इसमें ६४ से ६६ समय हैं। पद्य संख्या १३ से १७ हजार तक है और अनुष्टुप छन्द की ३२ मात्रा के हिसाब से ३० से ३६ हजार तक श्लोक या ग्रन्थाग्रन्थ हैं। इस रूपान्तर की प्रतियाँ यूरोप तथा बम्बई, कलकत्ता, आगरा, काशी और बीकानेर आदि स्थानों में हैं।

२. मध्यम रूपान्तर—इसमें ४० से ४७ तक समय हैं और श्लोक-संख्या ६ से १२ हजार तक है। इस रूपान्तर की प्रतियाँ बीकानेर, अबोहर, लाहौर, पूना और कलकत्ता में हैं।

३. लघु रूपान्तर—इसमें १६०० से २००० तक पद्य हैं और श्लोक-संख्या ३५०० है। इस रूपान्तर की प्रतियाँ बीकानेर और लाहौर में हैं।

४. लघुतम—यह लघु के आधे के बराबर है और इसमें १३०० के करीब श्लोक हैं। समयों का विभाजन इसमें नहीं है। इसकी एक प्रति बीकानेर के श्री अगरचन्द नाहटा के पास है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो का आधार बृहद् रूपान्तर वाली प्रतियाँ ही हैं और ऐतिहासिकता, अनैतिहासिकता-सम्बन्धी विवाद भी इसीको सामने रखकर हुआ। मध्यम, लघु तथा लघुतम रूपान्तरों के प्राप्त होने के बाद से एक नई समस्या यह खड़ी हो गई है कि इन सभी रूपान्तरों में से किस रूपान्तर को प्रामाणिक माना जाय जिसके आधार पर विभिन्न दृष्टियों से रासो का साहित्यिक मूल्यांकन किया जा सके। हर रूपान्तर को किसी-न-किसी विद्वान् का समर्थन प्राप्त है। श्री मथुराप्रसाद दीक्षित ओरियण्टल कालेज लाहौर की मध्यम रूपान्तर वाली प्रति को ही असली रासो मानकर उसका सम्पादन कर रहे हैं। इस 'असली पृथ्वीराज रासो' का प्रथम समय प्रकाशित भी हो गया है। दीक्षितजी के मत से रासोकार ने स्वयं अपने ग्रन्थ की श्लोक-संख्या सात हजार दे दी है :

सत्त सहस नष सिष सरस सकल आदि मुनि दिष्ष
घट बढ़ मत्तइ कुइ पढ़ै मोहि दूषन न विषिष्ष।

और दीक्षितजी की प्रति की श्लोक-संख्या उनके कथनानुसार आर्या छन्द से करीबन ७००० बैठ भी जाती है। अतः दीक्षितजी के मत से "रासो सात हजार है। न्यूनाधिक नहीं है। छपे हुए रासो की छन्द-संख्या सोलह हजार तीन सौ है। अतएव यह निश्चय हो गया कि इस रासो में प्रक्षेप है और प्राचीन पुस्तक से मिलाने पर मालूम हुआ कि जिन घटनाओं का उल्लेख करके ओझाजी इसको जाली कहते हैं, वे घटनाएँ इसमें नहीं हैं।"[1] यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि

१. 'असली पृथ्वीराजरासो', प्राक्कथन, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १६५२

'सत्त सहस' वाला छन्द रासो के प्रथम समय के शुरू में ही आया हुआ है। कहा जा सकता है कि ग्रन्थ के प्रारम्भिक २०-२५ छन्द स्तुति के लिखने के बाद ही चन्द को यह शंका क्यों होने लगी कि बाद में उनका ग्रन्थ इस अवस्था में पहुँच जायगा कि लोगों को उनकी मूल कृति का पता ही नहीं लगेगा जिससे कि 'सत्त सहस' तथा 'मोहि दूषन न विसिष्ष' लिखकर वे दोष से बरी हो गए। दूसरी बात यह कि चन्द को ग्रन्थ पूरा होने के पहले ही यह कैसे मालूम हो गया कि उनका ग्रन्थ सात हजार छन्दों में ही समाप्त हो जायगा ? क्या उन्होंने प्रारम्भ से ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि सात हजार से एक भी छन्द अधिक या कम न लिखेंगे ? तीसरी बात यह कि 'सत्त सहस' का अर्थ जैसा कि सी० वी० वैद्य ने लिखा है 'शत सहस' अर्थात् एक लाख भी हो सकता है।[1] रासो को तो परम्परा से लक्ष श्लोक परिमाण वाला ग्रन्थ माना भी जाता रहा है। अपने को कवि चन्द का ही वशंधर कहने वाले कवि यदुनाथ ने सं० १८०० के लगभग रचित अपने ग्रन्थ 'वृत्त विलास'[2] में रासो में एक लाख पाँच हजार श्लोकों का होना लिखा है :

एक लाख रासो कियौ, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजस, जाहर सकल जहान ॥

(वृत्त विलास, ५६)

लगभग सं० १७७७ में गुजराती कवि प्रेमानन्द के पुत्र वल्लभ ने भी 'कुन्ती-प्रसन्नाख्यान' नामक अपने ग्रन्थ में रासो को भारत के प्रमाण का अर्थात् एक लाख छन्दों वाला ग्रन्थ लिखा है :

भारत समुं प्रमाण, रासा ना तमासा भाले।

इसके अतिरिक्त नाहटा जी को मुनि विनयसागर से जो दो खण्डित प्रतियाँ मिली हैं उनमें से एक में (लिपिकाल सं० १७७७) रासो का एक लाख के करीब होना लिखा है।[3] यहाँ तक कि कर्नल टाड ने भी अपने ग्रन्थ 'एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज़ आव राजस्थान'[4] में १८वीं सदी में राजस्थान में रासो के एक लाख श्लोक-संख्या वाला ग्रन्थ समझे जाने के प्रवाद का जिक्र किया है।

१. 'हिन्दू भारत का उत्कर्ष या राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास', मूल अँग्रेजी ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद।

२. 'कोशोत्सव स्मारक संग्रह', 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल', पृ० ६४।

३. पृथ्वीराजरासो और उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ—'राजस्थानी', अक्तूबर १६३६।

४. जिल्द १, पृ० २५४।

अतः 'सत्त सहस' वाला छन्द तो निश्चित रूप से बाद का जोड़ा हुआ मालूम होता है। निष्कर्ष यह कि 'सत्त सहस' के आधार पर किसी प्रति को मूल रासो मान लेना ठीक नहीं मालूम होता।

डॉ० दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा, मीनाराम रंगा तथा मूलराज जैन लघु रूपान्तरों को ही मूल रासो मानते हैं। इस सम्बन्ध में श्री मूलराज जैन का कहना है कि "मध्यम वाचना में लघु वाचना का सारा विषय कुछ विस्तृत रूप में मिलता है और इसके अतिरिक्त कई अन्य घटनाओं का वर्णन भी मिलता है; जैसे अग्नि-कुण्ड से चौहान-वंश की उत्पत्ति, पद्मावती, हंसावती, शशिव्रता, पड़िहारनी आदि अनेक राजकुमारियों से पृथ्वीराज का विवाह, उसमें विविध युद्ध, पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन में अनेक युद्ध होना और हर बार शहाबुद्दीन का बन्दी होना, भीम द्वारा सोमेश्वर का वध आदि। रासो की बृहद् वाचना में लघु वाचना का विषय विशेष विस्तार से मिलता है और इसके अतिरिक्त इसमें मध्यम वाचना की अनेक घटनाओं का समावेश भी है।[1] निष्कर्ष यह कि 'रासो की उपलब्ध वाचनाओं में से लघु वाचना शेष दोनों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक और प्राचीन है।' इस मत के समर्थन में डॉ० दशरथ शर्मा के विचार विशेष महत्त्व के हैं। उनके मत से रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने वालों का आधार बृहद् संस्करण की प्रतियाँ हैं; क्योंकि ऐतिहासिक गलतियाँ उसीमें हैं। लघु संस्करणों में वे ऐतिहासिक गलतियाँ नहीं हैं। संयोगिता-कथा तथा पृथ्वीराज की मृत्यु से सम्बन्धित घटनाएँ (जिन्हें ओझा जी अनैतिहासिक मानते हैं) यद्यपि इनमें भी बृहद् संस्करण से ही मिलती-जुलती हैं किन्तु डॉ० शर्मा के मत से इन घटनाओं की ऐतिहासिकता की पुष्टि 'पृथ्वीराज-विजय', 'सुर्जनचरित', 'आइने अकबरी' तथा 'पृथ्वीराज प्रबन्ध' से हो जाती है। 'पृथ्वीराज-विजय' की प्राप्त प्रति खण्डित है; उसके अन्तिम चार श्लोकों में गंगा-तट पर स्थित किसी नगर की राजकुमारी से, जो तिलोत्तमा का अवतार है, पृथ्वीराज का प्रेम-प्रसंग वर्णित है। यह वर्णन रासो से मिलता-जुलता है। अतः "जो राजकुमारी रासो की प्रधान नायिका है, जिसके विषय में अबुलफजल को पर्याप्त ज्ञान था, जिसकी रसमयी कथा चाह्मान वंशाश्रित एवं चाह्मान वंश के इतिहासकार चन्द्रशेखर के 'सुर्जन चरित' में स्थान प्राप्त कर चुकी है, जिसका सामान्यतः निर्देश 'पृथ्वीराज-विजय' महाकाव्य में भी मिलता है। जिसके लिए जयचन्द और पृथ्वीराज का वैमनस्य इतिहासानुमोदित एवं तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के अनुकूल है, जिसकी अपहरण कथा अभूतपूर्व एवं

१. 'प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ', 'पृथ्वीराज रासो की विविध वाचनाएँ', पृ० १३१।

असंगत नहीं, जिसका रासो-स्थित भाग पर्याप्त प्राचीन भाषा में निबद्ध है, जिसकी सत्ता का निराकरण 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रम्भामंजरी' के मौन के आधार पर कदापि नहीं किया जा सकता, जिसकी ऐतिहासिकता के विरुद्ध सब युक्तियाँ हेत्वाभास-मात्र हैं, उस कान्तिमती संयोगिता को हम पृथ्वीराज की परम प्रेयसी मानें तो दोष ही क्या है ?"[1]

इस प्रकार लघु संस्करणों को प्रामाणिक और मूल रासो मानने वाले विद्वानों के पास भी सिवा इस तर्क के कि इन संस्करणों में ऐतिहासिक गलतियाँ नहीं हैं या कम हैं, अतः ये प्रामाणिक हैं, अन्य कोई ऐसा ठोस प्रमाण नहीं है जिसके आधार पर वे इनके मूल रासो होने का दावा कर सकें। ऐसा भी नहीं है कि लघु रूपान्तर वाली कोई प्रति मध्यम अथवा बृहद् रूपान्तर वाली प्रतियों से बहुत अधिक प्राचीन हो। रासो की सभी हस्तलिखित प्रतियाँ १७वीं से १९वीं शताब्दी के बीच की हैं। अतः विद्वानों की यह आपत्ति तर्कसंगत है कि "प्रस्तुत प्रतियों में भी यह कहना कि अमुक प्रति लघुतम होने से प्रामाणिक है, युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। सम्भव है संकलन-कर्ता ने जान-बूझकर कुछ अंश छोड़ दिया हो.......ऐसे संस्करण में स्वाभाविक रूप से अशुद्धियों की संख्या कम होगी। जितनी ही अधिक घटनाओं का समावेश किया जायगा, उतनी ही अशुद्धियों का बढ़ना स्वाभाविक है। अतः अशुद्धियों का अभाव देखकर ही उसे प्रामाणिक सिद्ध करने के लोभ में पड़ना भ्रम है।"[2] सच पूछा जाय तो ऐतिहासिक दृष्टि से इन संस्करणों में भी कुछ-न-कुछ गलतियाँ शेष रह ही जाती हैं। इतिहास-समर्थित घटनाओं के आधार पर ही यदि रासो की प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता तथा मूल रूप आदि का निर्णय करना है (जैसा कि इन विद्वानों ने किया है) तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन संस्करणों में से कोई भी संस्करण प्रामाणिक नहीं है।

किन्तु इस विवेचना से इतना तो स्पष्ट है कि ओझा जी तथा उनके समर्थकों के अतिरिक्त अन्य सभी विद्वान् (भले ही उनका मूल रासो को खोज लेने का दावा मान्य न हो) यह मानते हैं कि चन्द पृथ्वीराज का समकालीन था, और उसने पृथ्वीराज के सम्बन्ध में कोई काव्य लिखा था जिसने चारण-भाटों के हाथ में पड़कर आज यह बृहद् आकार धारण कर लिया है। इस अनुमान की पुष्टि पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह में प्राप्त चार छप्पयों से हो जाती है। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह के पृथ्वीराज और जयचन्द-विषयक प्रबन्धों में चन्द

१. 'राजस्थान भारती', भाग १ अंक २-३ जुलाई-अक्तूबर १९४६, पृ० २७।

२. 'वीर काव्य', डॉ० उदयनारायण तिवारी—पृ० १११, प्रयाग, २००५।

द्वारा कहे गए चार छप्पय उद्धृत हैं। सबसे पहले मुनि जिनविजय जी ने विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' में भी उन छप्पयों को ढूँढ़ निकाला। रासो में इन छप्पयों के प्राप्त होने के बाद से सम्पूर्ण रासो को १६वीं-१७वीं सदी का जाली ग्रन्थ मानने वाले विद्वानों के मत की व्यर्थता सिद्ध हो चुकी है। जैसा कि मुनि जी ने लिखा है "इस संग्रह-गत पृथ्वीराज और जयचन्द-विषयक प्रबन्धों से हमें यह ज्ञात हो रहा है कि चन्द-कवि-रचित 'पृथ्वीराज रासो' नामक हिन्दी-महाकाव्य के कर्तृत्व और काल के विषय में जो कुछ पुराविद् विद्वानों का यह मत है कि वह ग्रन्थ समूचा ही बनावटी है, और १७वीं सदी के आस-पास में बना हुआ है, यह मत सर्वथा सत्य नहीं है। इस संग्रह के उक्त प्रकरणों में जो ३-४ प्राकृत-भाषा के पद्य उद्धृत किये हुए मिलते हैं, उसका पता हमने उक्त रासो में लगाया है और इन ४ पद्यों में से ३ पद्य, यद्यपि विकृत रूप में लेकिन शब्दशः, उसमें मिल गए हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि चन्द कवि निश्चित रूप से एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज का सम-कालीन और उसका सम्मानित एवं राज-कवि था। उसीने पृथ्वीराज के कीर्ति-कलाप के वर्णन के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो 'पृथ्वीराज रासो' के नाम से प्रसिद्ध हुई।"[1]

जिस पी संज्ञक प्रति से ये प्रबन्ध लिये गए हैं, उसका लिपि-काल सं० १५२८ है। कोटरगच्छ के सोमदेवसूरि के शिष्य मुनि गुणवर्धन ने मुनि उदय-राज के लिए इसकी प्रतिलिपि की थी।[2] इस प्रति के अन्तिम पत्र के प्रथम पृष्ठ पर × का निशान लगाकर हासिये में निम्नलिखित दो गाथाएँ लिखी हैं :

सिरवत्थुपालनन्दण मंतीसर जयसिंह भणणत्थं।
नादिंगगच्छ मंडण उदयप्पह सूरि सीसेणं॥
जिणभद्देण य विक्कम कलाड नवइ अहिय बार सए।
नाना कहाण पहाण एस पबंधावली रईआ॥

अर्थात् नागेन्द्रगच्छ के आचार्य उदयप्रभसूरि के शिष्य जिनभद्र ने, मन्त्रीश्वर वस्तुपाल के पुत्र जसवन्तसिंह के पढ़ने के लिए वि० सं० १२९० में इस नाना कथानक प्रधान-प्रबन्धावली की रचना की। मुनि जी का अनुमान है कि कुछ प्रबन्धों को छोड़कर अन्य सभी प्रबन्ध (जिसमें उक्त दोनों प्रबन्ध भी

१. 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह', पृ० ६।
२. सं० १५२८ वर्षे मार्गसिरि १४ सोमे श्री कोटरगट गच्छे श्री सोमदेव सूरीणां शिष्येण मुनिगुण वर्द्धनेन लिपीकृतः। मु० उदयराजयोग्यम्।

हैं) गुणवर्धन ने इस 'नाना कथानक प्रधान प्रबन्धावली' से ही लिये हैं।[1] 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में उद्धृत ये छप्पय स्पष्ट ही किसी प्रबन्ध काव्य के अंश मालूम पड़ते हैं; क्योंकि बिना उनका पूर्वापर-सम्बन्ध जाने उनका अर्थ समझ में नहीं आ सकता, कैमास-वध से सम्बन्धित छप्पय निश्चित रूप से प्रसंग सापेक्ष हैं, स्वतन्त्र नहीं। इस प्रकार इन छन्दों से चन्द तथा उसके पृथ्वीराज-विषयक प्रबन्ध काव्य की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है और चूँकि ये ही छन्द रासो में भी थोड़े विकृत रूप में किन्तु शब्दशः प्राप्त हो जाते हैं, अतः यह अनुमान सही है कि वर्तमान रासो में चन्द-कृत मूल प्रबन्ध भी अन्तर्भुक्त है। अनेक शताब्दियों तक प्रबन्ध-रचना-कुशल चारण-भाटों के बीच मौखिक परम्परा में विकास पाकर यदि चन्द-कृत मूल प्रबन्ध[2] (रासो) ने वर्तमान बृहद् आकार धारण कर लिया तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

जहाँ तक चन्द की प्राचीनता का प्रश्न है चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन न मानने का ओझाजी आदि विद्वानों के पास केवल एक तर्क यही है कि 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के सम्बन्ध में बिलकुल अनैतिहासिक बातें लिखी हुई हैं; यदि चन्द पृथ्वीराज का समकालीन होता तो वह पृथ्वीराज के बारे में इतनी गलत बातें न लिखता। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि ओझा जी यह नहीं मानते कि रासो अपने मूल रूप में प्रारम्भ में छोटा रहा होगा और धीरे-धीरे कई शताब्दियों में चारण-भाटों द्वारा विकास पाकर तथा जनश्रुति पर आधारित अनेक काल्पनिक घटनाओं से युक्त होकर उसने यह बृहद् रूप धारण कर लिया। 'वृत्त विलास' के आधार पर वे मूल रासो में १०,५००० श्लोकों का होना मानते हैं और चूँकि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो का परिमाण भी इतना ही है, अतः उनके मत से बृहद् रूपान्तर वाला रासो ही मूल रासो है। ओझाजी 'पृथ्वीराज रासो के छोटा होने की कल्पना को निर्मूल' समझते हैं। वे १०५००० श्लोकों वाले इस ग्रन्थ को किसी एक काल में (१६वीं सदी) एक व्यक्ति (इतिहास से अनभिज्ञ किसी भाट) द्वारा लिखा मानते हैं। किन्तु 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' के आधार पर ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि रासो अपने मूल रूप में इतना बृहद् नहीं रहा होगा। यदि पुरातन प्रबन्ध-संग्रह के उक्त दोनों प्रबन्धों का रचना-काल सं० १२९० मानने में किसी को आपत्ति हो तब भी इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि १४६३ ई० (सं० १५२६) तक चन्द का पृथ्वीराज-विषयक

१. 'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह', पृ० ८।

२. 'कोशोत्सव-स्मारक-संग्रह'— 'पृथ्वीराज रासो का निर्माण-काल' पृ० ६४।

प्रबन्ध काव्य इतना प्रसिद्ध हो गया था कि उसके छन्द भिन्न-भिन्न प्रबन्ध-संग्रहों में उद्धृत होने लगे थे। ओझा जी के ही ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर यह सिद्ध है कि वर्तमान रासो की बहुत-सी बातें १४६३ के बाद की हैं। मेवात के मुगल राजा से लड़ाई तथा समरसिंह से सम्बन्धित घटनाएँ आदि १४६३ के बाद की हैं।[1] अतः निश्चित रूप से ये सब बातें बाद की जोड़ी हुई हैं। इससे यह सिद्ध है कि पूरा-का-पूरा रासो किसी एक काल में एक व्यक्ति द्वारा नहीं लिखा गया, उसे यह रूप देने में कई शताब्दियाँ, और अनेक प्रतिभाएँ लगी हैं। रासो के मौखिक परम्परा में विकसित होने के कारण वर्तमान रासो में से चन्द के मूल ग्रन्थ को भी अलग कर सकना असम्भव है। फिर चन्द की कृति को देखे बिना ही उसे अनैतिहासिक कैसे कहा जा सकता है? अतः जब तक चन्द की मूल कृति को ढूँढकर उसे अनैतिहासिक नहीं सिद्ध कर दिया जाता तब तक चन्द और पृथ्वीराज की समकालीनता के बारे में 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' के उक्त दोनों प्रबन्धों, 'आइने अकबरी' तथा स्वयं 'पृथ्वीराज रासो' के उल्लेखों और आनुश्रुतिक परम्परा को अविश्वसनीय मानने का कोई आधार नहीं दिखलाई पड़ता।

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' वस्तुतः विकसनशील महाकाव्य है और जैसा कि सी० वी० वैद्य ने लिखा है "कई महत्त्वपूर्ण बातों में विशेषतया मौलिकता और प्राचीनता के सम्बन्ध में रासो का महाभारत से बहुत-कुछ सादृश्य है। ऐसे विवादों में परस्पर-विरोधी दो मतों के बीच में सत्य निहित रहता है। हमारी समझ में इस महाकाव्य का मूल भाग प्रामाणिक और मूल लेखक की कृति और प्राचीन है, परन्तु कम-से-कम इसमें पीछे से कई बातें बढ़ाई गई हैं। 'हिन्दी-महाभारत-मीमांसा' में जैसा हमने लिखा है कि वर्तमान उपलब्ध महाभारत व्यास के मूल महाभारत का दुबारा सौति द्वारा परिवर्द्धित रूप है (पहली बार वैशम्पायन ने मूल महाभारत को बढ़ाया था) उसी तरह मूल रासो चन्द ने रचा, फिर उसके पुत्र ने कुछ बढ़ा दिया और १६वीं या १७ वीं सदी के लगभग किसी अज्ञात कवि ने उसमें अपनी रचना मिला दी है। बहुत-सी महत्त्व की बातों में दोनों महाकाव्यों में बहुत-कुछ साम्य है।"[2] अतः यदि आज चन्द-कृत मूल रासो की कोई प्राचीन प्रति प्राप्त भी हो जाय तब भी वर्तमान रासो का महत्त्व कम नहीं होगा। अपने विकसित रूप

१. 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह', पृष्ठ ८२।
२. 'हिन्दू भारत का उत्कर्ष या राजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास', मूल अँग्रेजी ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद, काशी, सं० १९८६।

में ही उसने अपना महत्त्व सिद्ध कर दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से अयथार्थ घटनाओं का संग्रह होते हुए भी सामन्तयुगीन जीवन का जितना यथार्थ चित्र रासो उपस्थित करता है, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' एक विकसनशील महाकाव्य है और उसकी ऐतिहासिकता, अनैतिहासिकता-सम्बन्धी विवाद से अब कोई लाभ नहीं है। फिर भी यदि कोई ऐतिहासिकता के आधार पर ही उसे १६वीं सदी का लिखा हुआ मानने का हठ करे तो भी रासो का महत्त्व कम नहीं। जैसा कि डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है : "आखिर हिन्दी में १६वीं शताब्दी से पहले के कितने प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं—'सूर सागर' का रचना-काल १५३० और १५५० ई० के बीच में पड़ता है। जायसी का 'पद्मावत' १५४० ई० में लिखा गया था और 'रामचरित मानस' १५७५ ई० में, रासो के वर्तमान स्वरूप लगभग इसी समय के हैं। ऐसी अवस्था में क्या यह उचित नहीं था कि कम-से-कम १६वीं शताब्दी के एक प्रबन्ध-काव्य के रूप में ही इसका अध्ययन किया जाता।"[1] साथ ही रासो की ऐतिहासिकता पर विचार करने वालों को यह भूलना नहीं चाहिए कि ऐतिहासिक कहे जाने वाले अधिकांश भारतीय काव्यों में भी अनेक अनैतिहासिक तत्त्व भरे पड़े हैं। भारतीय ऐतिहासिक काव्यों को तीन कोटियों में रखा जा सकता है—

१. समसामयिक कवियों द्वारा लिखे हुए ऐतिहासिक काव्य।
२. परवर्ती कवियों द्वारा लिखे हुए ऐतिहासिक काव्य।
३. विकसनशील ऐतिहासिक काव्य।

इनमें से पहले प्रकार के ऐतिहासिक काव्य तो प्रशस्तिमूलक होते हैं, जिनमें कवि अपने आश्रयदाता के जीवन से सम्बन्धित कुछ घटनाओं का वर्णन करता है। इस प्रकार के ऐतिहासक काव्य भी दो तरह के हो सकते हैं—एक वे, जिनमें कवि मुख्य रूप से अपने कथानायक के जीवन की कुछ वास्तविक घटनाओं को ही अपने काव्य का आधार बनाता है और दूसरे वे जिनमें कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ अनेक कवि-कल्पित घटनाएँ मिली रहती हैं। परवर्ती कवियों द्वारा लिखे हुए ऐतिहासिक काव्यों में ये कल्पित घटनाएँ तो होती ही हैं, साथ ही नायक के जीवन से सम्बन्धित अनेक निजन्धरी घटनाएँ भी कवि द्वारा ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार कर ली जाती हैं। विकसनशील ऐतिहासिक महाकाव्यों में तो ऐतिहासिकता और भी कम होती है, क्योंकि उनमें निजन्धरी और कल्पित घटनाएँ तो होती ही हैं,

१. 'पृथ्वीराज रासो', डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, 'विद्यापीठ-अभिनन्दन-ग्रन्थ', पृ० १७१।

इसके साथ-ही-साथ अनेक परवर्ती कवि अपने ऐतिहासिक अज्ञान के कारण अथवा किसी अन्य कारण से अनेक परवर्ती ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं और तथ्यों को भी मिलाते जाते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' में जो अनैतिहासिक तत्त्वों की इतनी अधिकता दिखलाई पड़ती है, वह उसके विकसनशील स्वरूप के कारण ही है। उसमें उपर्युक्त तीनों ही प्रकार के अनैतिहासिक तत्त्व वर्तमान हैं। इन अनैतिहासिक तत्त्वों के आधार पर ही विभिन्न विद्वानों ने रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। किन्तु अनैतिहासिक तत्त्वों के आधार पर ही किसी काव्य को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता; क्योंकि, जैसा ऊपर कहा जा चुका है अधिकांश भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में अनैतिहासिक तत्त्व भरे हुए हैं।

सच पूछा जाय तो इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी लिया ही नहीं गया। यहाँ बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथा-नायक बनाने की प्रवृत्ति रही है।[१] ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम पर लिखे जाने वाले काव्य-ग्रन्थों का सर्वप्रथम रूप हमें शिला-लेखों और ताम्रपट्टों पर खुदी हुई उन प्रशस्तियों में मिलता है जिनका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक घटना अथवा व्यक्ति से है। इन प्रशस्तियों का मुख्य उद्देश्य किसी राजा विशेष के महानतापूर्ण कार्यों अथवा शक्ति और शौर्य का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करना है। कभी-कभी इन प्रशस्तियों में वंश-क्रम या अन्य महत्त्वपूर्ण वर्णन भी मिलते हैं। किन्तु जैसा कि एस० के० डे ने लिखा है कि "एक या दो पीढ़ियों के बाद का वंश-क्रम प्रायः कवि-कल्पना-प्रसूत और अत्युक्तिपूर्ण है और शुद्ध तथ्य-कथन का स्थान प्रशंसापूर्ण वाक्यों ने ले लिया है। प्रायः इन प्रशस्तियों के लेखक साधारण प्रतिभा के ही कवि रहे हैं, परिणाम यह हुआ है कि ये प्रशस्तियाँ न तो सुन्दर काव्य बन सकी हैं और न सच्चा इतिहास। तथ्य और कल्पना—फैक्ट्स और फिक्सन—के मिश्रण की जो प्रथा इन प्रशस्तियों द्वारा स्थापित हुई वह बाद के ऐतिहासिक काव्य-लेखकों द्वारा भी स्वीकृत हुई और धीरे-धीरे कठोर तथ्यात्मक सत्यों की अपेक्षा सुखद कल्पना की ओर ही कवियों का अधिक झुकाव होता गया।"[२]

---

१. 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', ले० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७१।

२. 'ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर', पृष्ठ ३४६।
—S. N. Das Gupta and S. K. De—University of Calcutta 1947.

ऐतिहासिक काव्यों का स्वरूप

भारतीय सभ्यता की प्राचीनता और उसके विकसित रूप को देखते हुए कुछ विद्वानों का यह कथन अवश्य ही कुछ आश्चर्यजनक-सा लगता है कि भारतवर्ष में ऐतिहासिक दृष्टि की नितान्त कमी रही है फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि संस्कृत में इस प्रकार का प्रभूत साहित्य होते हुए भी आधुनिक अर्थ में शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि किसी भी लेखक की नहीं रही है। वास्तव में ऐतिहासिक तथ्यों और तिथिपरक वर्णनों की कोई परम्परा भारतीय साहित्य में प्रारम्भ से ही नहीं मिलती। पुराणों और जैन-बौद्ध-ग्रन्थों में भी जो इस प्रकार के विवरण मिलते हैं, उनमें भी तथ्य और कल्पना के मिश्रण से ऐतिहासिक दृष्टि आच्छन्न दिखलाई पड़ती है। अतिमानवीय कार्य, जादू-टोना आदि में विश्वास, देवी-देवताओं द्वारा मनुष्य के भाग्य का नियन्त्रण आदि से इतिहास का यथार्थ दब-सा गया है। इसके अतिरिक्त जो भी काव्य, नाटक और कथाएँ किसी ऐतिहासिक व्यक्ति अथवा घटना को लेकर लिखी गईं उनमें भी ऐतिहासिक वास्तविकता पर अधिक जोर न देकर काव्य, नाटक, कथा-सम्बन्धी सम्भावनाओं की ओर अधिक ध्यान दिया गया।

'हर्षचरित' कवि के समसामयिक राजा के जीवन से सम्बन्धित प्रथम काव्य है, उसकी कथावस्तु का आधार ऐतिहासिक है। किन्तु निजन्धरी कथाओं की तरह इसमें भी कल्पना का पर्याप्त सहारा लिया गया है। 'हर्ष-चरित सुबन्धु की 'वासवदत्ता' और बाणभट्ट के ही ग्रन्थ 'कादम्बरी' से कम काल्पनिक नहीं है; अन्तर केवल इतना है कि इन दोनों ग्रन्थों की कथा-वस्तु विशुद्ध काल्पनिक है और 'हर्षचरित' की कथा का आधार कवि के आश्रयदाता राजा के जीवन से सम्बद्ध कुछ वास्तविक घटनाएँ हैं, किन्तु सब मिलाकर वास्तविकता के नाम पर हर्ष के जीवन की एक छोटी-सी घटना ही इसमें प्राप्त होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से हर्ष के जीवन का पूर्ण और सन्तोषजनक चित्र इसमें नहीं प्राप्त होता। सब मिलाकर 'हर्षचरित' में ऐतिहासिक तथ्य नाम-मात्र को ही है। प्रधानतः वह गद्यकाव्य है। उसकी शैली वही है, अन्तरात्मा वही है और स्थापन-पद्धति भी वही है। इतिहास-लेखक उससे लाभान्वित हो सकता है, क्योंकि हर्ष के सभा-मण्डल का, ठाट-बाट का, रहन-सहन का उसे परिचय मिल जाता है पर उसे सावधान रहना पड़ता है। कौन जाने कवि कल्पना के प्रवाह में उपमा, रूपक, दीपक या श्लेष की उमंग में तथ्य को कितना बढ़ा रहा है, कितना आच्छादित कर रहा है, कितना दूसरे रंग में रँग रहा है। इस कवि के लिए कल्पना की दुनिया वास्तविक दुनिया से अधिक सत्य है

और वास्तविक जगत् की कोई घटना उसकी कल्पना-वृत्ति को उकसाने का सहारा भी है। इस प्रकार इतिहास उसकी दृष्टि में गौण है, वह केवल कल्पना-वृत्ति को उकसाने के लिए और मनोहरतर जगत् के निर्माण के लिए सहायक-मात्र है।[१] यही कारण है कि एस० के० डे 'हर्षचरित' तथा इस प्रकार के अन्य ऐतिहासिक कहे जाने वाले काव्यों को 'ऐतिहासिक काव्य' की संज्ञा देना ठीक नहीं समझते, क्योंकि इस नाम से उनका यथार्थ स्वरूप व्यक्त नहीं होता। ऐतिहासिक कथावस्तु के ग्रहण-मात्र से ही किसी काव्य की शैली, अन्तरात्मा और स्थापन-पद्धति ऐतिहासिक नहीं हो सकती।[२]

इस प्रकार यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष में ऐतिहासिक बुद्धि का नितान्त अभाव रहा है किन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय मस्तिष्क ने यथातथ्यात्मक ऐतिहासिक घटनाओं को कभी भी बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया। इसका मुख्य कारण भारतीय चिन्तन-प्रणाली की वह विशेषता है जिसके अनुसार काल्पनिक जगत् को प्रत्यक्ष वास्तविक जगत् से अधिक महत्त्वपूर्ण और वास्तविक स्वीकार किया जाता रहा है। सभी सिद्धान्तों ने प्रत्यक्ष जीवन में घटने वाली घटनाओं के इस प्रकार के मूल्यांकन की प्रायः सदा उपेक्षा की। कर्मवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का वर्तमान जीवन और उसके क्रिया-कलाप पूर्वजन्मों में किये कर्मों के परिणाम हैं। इसके साथ-ही-साथ भाग्यवाद, देवी-देवता, जादू-टोना, भूत-प्रेत, यक्ष आदि में विश्वास के कारण आधुनिक युग की वह वैज्ञानिक बुद्धि भी उस समय नहीं विकसित हो सकी थी, जो प्रकृति की प्रत्येक घटना का कारण प्रकृति में ही ढूँढ़ती है। भारतीय मस्तिष्क की इस मनोवैज्ञानिक बनावट के कारण कल्हण-जैसे कवि को भी, जिनकी दृष्टि अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक ऐतिहासिक है, हेरोडोटस की समता में रखने में विद्वानों को संकोच होता है।[३] सच तो

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य का आदि काल', पृ० ६६।

२. The term Historical Kavya, which is often applied to this and other works of the same kind, is hardly expressive; for in all essentials, the work is a prose kavya and the fact of its having a historical theme does not make it historical in style, spirit and treatment.

A History of Sanskrit Literature, p. 228—University of Calcutta—1947.

३. But the most ardent believer of Kalhan would not for a moment claim for him that he could be matched

यह है कि भारतीय काव्य में ऐतिहासिक तथ्यों का स्थान नहीं के बराबर रहा है, क्योंकि तत्कालीन शासकों की अपेक्षा पौराणिक नायकों का जीवन काव्य के लिए अधिक उपयुक्त और मनोरंजक समझा जाता था। यदि इस प्रकार के किसी वास्तविक राजा को लिया भी गया तो उसे भी पौराणिक और निजन्धरी कथा-नायकों की ऊँचाई तक ले जाया गया और पौराणिक कथा-नायकों से सम्बन्धित कुछ कहानियों का भी उनमें समावेश करा दिया गया। संस्कृत के कला-सम्बन्धी सिद्धान्तों ने भी काल्पनिक और निर्वैयक्तिक कृति के निर्माण पर ही अधिक जोर दिया। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टियों से इस प्रकार की सभी रचनाएँ काव्य के ही अन्तर्गत मानी गईं। उनके लिए किसी विशेष रूप-विधान की अलग कल्पना नहीं की गई। काव्य-सम्बन्धी सभी विशेषताओं, कौशलों और कल्पना-विस्तार द्वारा इन्हें भी अलंकृत किया गया। ऐतिहासिक वस्तु के ग्रहण-मात्र से कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ। तत्वतः इस प्रकार की कृतियाँ उतनी ही अच्छी या बुरी हैं जितनी कि काल्पनिक कथाएँ।[१] अतः इन कृतिकारों के महत्त्व तथा गुण-दोष का विवेचन ऐतिहासिकता की दृष्टि से नहीं बल्कि काव्य की दृष्टि से होना चाहिए। कवि के रूप में उनके लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं कि वे अपने को निश्चित तथ्यों पर आधारित यथार्थ तक ही सीमित रखें।

यही कारण है कि "भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक नाम-भर लिया, शैली उनकी वही पुरानी रही। जिनमें काव्य-निर्माण की ओर अधिक ध्यान था, विवरण-संग्रह की ओर कम; सम्भावनाओं की ओर अधिक रुचि थी, घटनाओं की ओर कम; उल्लसित आनन्द की ओर अधिक झुकाव था, विलसित तथ्यावली की ओर कम। इस प्रकार इतिहास को कल्पना के हाथों परास्त होना पड़ा। ऐतिहासिक तथ्य इन काव्यों में कल्पना को उकसा देने के साधन मान

even with Herodotas and it must be remembered that no other writer approaches even remotedly the achievement of Kalhan.

A History of Sanskrit Literature—page 144. by A. B. Keith. Oxford University Press, 1948.

१. The fact of having a historical theme seldom made a difference; and such works are, in all essentials, as good or as bad as are all fictitious narratives.

A History of Sanskrit Literature, P. 348, S. N. Das Gupta and S. K. De—University of Calcutta, 1947.

लिए गए हैं। राजा का विवाह, शत्रु-विजय, जल-क्रीड़ा, शैल-वन विहार, दोला-विलास, नृत्य-गान-प्रीति—ये सब बातें ही प्रमुख हो उठी हैं। बाद में क्रमशः इतिहास का अंश कम होता गया और सम्भावनाओं का जोर बढ़ता गया। राजा के शत्रु होते हैं, युद्ध होता है। इतिहास की दृष्टि में एक युद्ध हुआ, और भी तो हो सकते थे, कवि सम्भावना को देखेगा, राजा के एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य अनेकों विवाहों की सम्भावना उत्पन्न करता है, जल-क्रीड़ा और वन-विहार की सम्भावना उत्पन्न करता है और कवि को अपनी कल्पना के पंख खोल देने का अवसर देता है। उत्तर-काल के ऐतिहासिक काव्यों में इसकी भरमार है। ऐतिहासिक विद्वान् के लिए संगति मिलाना कठिन हो जाता है।"[१]

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में भी ऐतिहासिकेतर काव्यों और कथाओं की भाँति अनेक निजन्धरी और काल्पनिक घटनाओं का उपयोग किया गया और कथा को रोचक और गतिशील बनाने तथा उसे अभीप्सित प्रभाव और मोड़ देने के लिए इन काव्यों में भी उन सभी कथात्मक कौशलों (Narrative Devices) का उपयोग किया गया, जिनका व्यवहार इसी उद्देश्य से भारतीय निजन्धरी और पौराणिक कथाओं में प्राचीन काल से होता चला आ रहा है, इनमें साथ ही सरसता और गति उत्पन्न करने के लिए सम्भावना, कवि-कल्पना अथवा लोक-विश्वास पर आधारित अनेक ऐसी घटनाओं का उपयोग भी इन काव्यों में हुआ जो निजन्धरी कथाओं में बार-बार प्रयुक्त होकर रूढ़ हो गई थीं। कथानक-सम्बन्धी इन रूढ़ियों के सम्बन्ध में अगले अध्याय में विचार किया जायगा।

---

१. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—'हिन्दी-साहित्य का आदि काल', पृ० ७०।

२

कथानक-रूढ़ि और उस पर किये गए कार्य

कथानक-रूढ़ि और अभिप्राय

'कथानक-रूढ़ि' शब्द का प्रयोग हिन्दी में सबसे पहले डॉ० हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' में किया है। ऐतिहासिक चरित-काव्यों पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है कि "ऐतिहासिक चरित का लेखक सम्भावनाओं पर अधिक बल देता है। सम्भावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ है कि हमारे देश के साहित्य में कथानक को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आ रहे हैं जो बहुत थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक-रूढ़ि में बदल गए हैं।"[१] कथानक-रूढ़ि के सम्बन्ध में द्विवेदीजी का यह संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित कथन व्याख्या की अपेक्षा रखता है। 'अभिप्राय' शब्द का प्रयोग यहाँ विशेष महत्त्व का है। किसी भी देश की साहित्यिक रूढ़ियों के अध्ययन के लिए उस देश के साहित्य में प्रचलित साहित्य-सम्बन्धी अभिप्रायों (मोटिव्स) का अध्ययन आवश्यक होता है। सामान्यतया साहित्यिक अभिप्राय और साहित्य-रूढ़ि शब्द का प्रयोग एक-दूसरे के पर्याय के रूप में ही किया जाता है। अभिप्राय उस शब्द अथवा एक साँचे में ढले हुए उस विचार को कहते हैं जो समान परिस्थितियों में अथवा समान मनःस्थिति और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किसी एक कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियों में बार-बार आता है।[२] अभिप्राय की यह एक सामान्य परिभाषा कही जा सकती है, क्योंकि विभिन्न कला-रूपों में इसका विभिन्न अर्थों में प्रयोग होता है

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७४।

२. Motif—A word or a pattern of thought which recurs in a similar situation or to evoke a similar mood within a work or in various works of a genre.

Shiple—Dictionary of World Literature.

और प्रत्येक के अपने अलग-अलग अभिप्राय भी होते हैं। कला में अभिप्राय का अर्थ होता है "कोई चल वा अचल, सजीव वा निर्जीव, प्राकृतिक अथवा काल्पनिक वस्तु; जिसकी अलंकृत एवं अतिरंजित आकृति मुख्यतः सजावट के लिए किसी कला-कृति में बनाई जाय।"[1] संगीत में बार-बार दुहराये जाने वाले शब्दों को भी 'अभिप्राय' कहते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय लोक-गीतों में बार-बार आने वाले 'सोने का गडुआ और गंगा जल पानी' एक प्रकार का अभिप्राय है।

काव्य-सम्बन्धी अभिप्राय

साहित्य के क्षेत्र में अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण प्रत्येक देश के साहित्य में कुछ साहित्य-सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन जाती हैं और उनका यान्त्रिक ढंग से साहित्य में प्रयोग होने लगता है। इन सभी रूढ़ियों को विद्वानों ने साहित्यिक अभिप्राय (लिटरेरी मोटिव्स) के नाम से अभिहित किया है। कीथ ने संस्कृत-साहित्य में कवि-शिक्षा पर विचार करते हुए भारतीय साहित्य में प्रचलित कवि-समयों के लिए भी 'अभिप्राय' शब्द का ही प्रयोग किया है।[2] यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि कला में अभिप्राय कोई काल्पनिक अथवा वास्तविक वस्तु होती है जिसका यों ही अलंकृति-मात्र के लिए प्रयोग किया जाता है, उदाहरणार्थ किसी स्त्री का चित्र बनाकर उसके हाथ में एक कमल दे देना भारतीय चित्र-कला का एक प्रचलित अभिप्राय है, किन्तु काव्य में अभिप्राय मुख्य रूप से उस परम्परागत विचार (आइडिया) को कहते हैं जो अलौकिक और अशास्त्रीय होते हुए भी उपयोगिता और अनुकरण के कारण कवियों द्वारा ग्रहीत होता है और बाद में चलकर रूढ़ि बन जाता है। इसके साथ-ही-साथ एक दूसरे प्रकार के 'अभिप्राय' भी प्रत्येक देश के साहित्य में प्रचलित हो जाते हैं, इन्हें विद्वानों ने वर्णनात्मक अभिप्राय (डिस्क्रिप्टिव मोटिव्स) कहा है। इनका भी मुख्य कारण अनुकरण ही होता है। भारतीय साहित्य में इस प्रकार के अभिप्रायों की प्रचुरता है। संस्कृत के कवि-शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थों में इनकी एक लम्बी सूची दे दी गई है और उनके आधार पर बाद का बहुत अधिक साहित्य भी निर्मित हुआ है।

---

१. 'भारत की चित्र कला', रायकृष्णदास।

२. 'ए हिस्टरी ऑव संस्कृत लिटरेचर', कीथ, पृ० ३४३।
Oxford University Press, 1948.

कथा सम्बन्धी-अभिप्राय

कीथ के मतानुसार जिस प्रकार परम्परा-प्राप्त अलौकिक विचारों ने अनेक काव्य-सम्बन्धी अभिप्रायों को उत्पन्न किया, उसी प्रकार कथाओं में इससे कुछ अधिक व्यापक विचारों की प्रायः होने वाली आवृत्ति ने भारतीय काल्पनिक कहानियों में अनेक अभिप्रायों को जन्म दिया। 'परकाय-प्रवेश', 'लिंग-परिवर्तन', 'पशु-पक्षियों की बातचीत', 'किसी वाह्य वस्तु में प्राण का बसना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं।[1] इनका उपयोग मुख्य रूप से कथा को आगे बढ़ाने तथा दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए ही किया जाता है। बहुत अधिक प्रचलित और रूढ़ हो जाने पर अलंकृति-मात्र के लिए भी इनका प्रयोग होने लगता है। उदाहरण के लिए स्त्री की दोहद-कामना अर्थात् गर्भवती स्त्री की इच्छा—स्त्री के जीवन की साधारण और परिचित घटना है, किन्तु कहानी कहने वालों के हाथ में पड़कर यही साधारण घटना अद्भुत रूप धारण कर लेती है। पति इस विषय में बहुत सतर्क रहता है और वह पत्नी की दोहद-कामना को पूर्ण करना अपना परम कर्तव्य समझता है। इसी दोहद का कहानीकारों ने 'अभिप्राय' के रूप में उपयोग किया है। जिससे उन्हें अतिरंजित घटनाओं को लाने तथा कहानी को आगे बढ़ाने और चमत्कार उत्पन्न करने का मौका मिल जाता है। कभी तो स्त्री पति के खून में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है तो कभी चन्द्र-पान करने की। वस्तुतः कहानीकार जिस दिशा में कहानी को मोड़ना चाहता है अथवा जिस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसीके अनुरूप दोहद-कामना स्त्री द्वारा करवाता है। उदाहरण के लिए 'कथासरित सागर' में मृगावती रुधिर से पूर्ण लीला-वापी में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है :

ततस्तस्यापि दिवसैः सहस्रानीक भूपतेः
बभार गर्भपाण्डुमुखी राज्ञी मृगावती
ययाचे साथभर्त्तारं दर्शनातृप्त लोचनं
दोहदं रुधिरापूर्ण लीलावापी निमज्जनं ।२।२।

जैन-कथाकारों का तो यह एक अत्यन्त प्रिय 'अभिप्राय' है। शायद ही कोई ऐसा जैन कहानी-लेखक हो जिसने किसी अर्हत अथवा चक्रवर्तिन की उत्पत्ति के पूर्व उनकी माता द्वारा उत्तम और पवित्र कार्य करने की दोहद-कामना न व्यक्त करवाई हो। उनकी यह कोई नई सूझ नहीं है, घिसी-पिटी रूढ़ि के रूप

१. 'ए हिस्टरी ऑव संस्कृत लिटरेचर', कीथ, पृ० ३४३।
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९४८।

में ही उन्होंने इसका उपयोग किया है, अपने चरित-काव्यों में वे जब भी इस बिन्दु पर पहुँचते हैं, इस अभिप्राय का अवश्य प्रयोग करते हैं। जैन-ग्रन्थ "समरादित्य संक्षेप' में गुणसेन और अग्निसेन का जब-जब पुनर्जन्म होता है, उनकी माताएँ कोई-न-कोई दोहद-कामना अवश्य व्यक्त करती हैं।[1]

टाइप और अभिप्राय

सभी देशों की निजन्धरी कहानियों का अध्ययन करने के बाद विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्येक देश में इस प्रकार की कहानियाँ कुछ निश्चित अभिप्रायों के आधार पर निर्मित होती हैं और उन्हें सरलता से कुछ निश्चित प्रकारों (टाइप्स) में बाँटा जा सकता है। जैसा कि शिप्ले ने लिखा है 'मोटिव' और 'टाइप' की धारणा ने इस दिशा में किये जाने वाले खोज-कार्य को बहुत आगे बढ़ाया है। 'अभिप्राय' छोटा-से-छोटा और पहचान में आने वाला तत्त्व होता है और उसके उपयोग से अपने-आपमें पूर्ण एक कहानी तैयार हो जाती है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए अभिप्रायों का महत्त्व इस बात का पता लगाने में है कि किसी विशेष प्रकार की कहानी के कौन-कौन-से उपकरण दूसरे प्रकार की कहानियों में भी प्रयुक्त हुए हैं। 'टाइप' के अध्ययन से यह पता चलता है कि किस प्रकार कथा-सम्बन्धी अभिप्राय रूढ़ि बन जाते हैं और एक ही साथ अनेक अभिप्राय रूढ़ि के रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं।[2]

---

१. I have since found the Jain writers scarcely ever let pass the opportunity of ascribing to noble women pregnant with a future saint or emperor bringing to perform good deeds while in this condition. It is with these authors not a bright invention but a cut and dried cliche, when they arrive at this point in the course of their Chronicles they take the motif out of its pigeon-hole to put it back again for use on the next similar occasion.

Bloomfield—Ocean of Story—Vol.7, Foreword, Page 7.

२. Research has been fostered by recognition of two com plementary concepts 'type' and 'motif'. The 'motif' is the smallest recognizable element that goes to make up a complete story. Its importance for comparative study is to show what material of a particular type is

अभिप्रायों की कोटियाँ

कथा-सम्बन्धी अभिप्रायों को मुख्य रूप से दो कोटियों में बाँटा जा सकता है—

(१) कुछ 'अभिप्राय' प्रायः किसी-न-किसी ऐसे लोक-विश्वास अथवा जन-सामान्य-विचार पर आधारित होते हैं जिन्हें वैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ नहीं कहा जा सकता। कवि-समयों की तरह वे भी अलौकिक और परम्परा-प्राप्त होते हैं। 'परकाय-प्रवेश', 'लिंग-परिवर्तन', 'सत्य क्रिया', 'किसी बाह्य वस्तु में प्राण का बसाना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इनका उपयोग मुख्य रूप से लोक-कथाओं में होता है और साहित्य में जहाँ कहीं भी इनका उपयोग हुआ है, लोक-कथाओं के प्रभाव के कारण ही हुआ है।

(२) इनके अतिरिक्त कुछ अभिप्राय ऐसे भी होते हैं जिन्हें बिलकुल असत्य तो नहीं कहा जा सकता किन्तु वास्तविकता की दृष्टि से उन्हें बिलकुल सच्चा भी नहीं कहा जा सकता, हाँ यथार्थ से इनका सम्बन्ध कुछ-न-कुछ रहता अवश्य है। 'किसी विशाल पक्षी की पूँछ पर बैठकर यात्रा करना', 'देवदूत श्वेतकेश', 'स्वप्न में भावी नायिका का दर्शन', 'समुद्र-यात्रा के समय जल-पोत का टूटना या डूबना और काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की जीवन-रक्षा', 'उजाड़ नगर का मिलना' आदि ऐसे ही अभिप्राय हैं। इस प्रकार के अभिप्राय मुख्य रूप से कवि-कल्पित होते हैं। अनुकरण तथा अत्यधिक प्रयोग के कारण ही वे रूढ़ि बन जाते हैं।

कथानक और अभिप्राय

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कथानक-रूढ़ि के अध्ययन का अर्थ कथा में बार-बार प्रयुक्त होने वाले ऐसे अभिप्रायों का अध्ययन करना है जो किसी छोटी घटना (इन्सीडेंट) अथवा विचार (आइडिया) के रूप में कथा के निर्माण और उसे आगे बढ़ाने में योग देने वाले तत्त्व होते हैं। कथानक-रूढ़ि के अध्ययन में कथानक का उतना महत्त्व इसलिए नहीं है कि कथानक को नई परिस्थिति और वातावरण के अनुरूप घटाया-बढ़ाया जा सकता है और देश-काल के अनुरूप उसे भिन्न-भिन्न ढंग से सजाया-सँवारा जा सकता है। किसी कथा-

common to other types. The importance of the type is to show the way in which narrative motifs form into conventional clusters.

Shiple—Dictionary of World Literature.

नक विशेष को बार-बार प्रयुक्त होते भी हम नहीं पाते, कथानक के अन्दर आने वाली छोटी घटनाओं और केन्द्रीय भावों (सेंट्रल आइडियाज़) आदि की ही आवृत्ति बार-बार मिलती है।[1]

भारतीय कथानक-रूढ़ियों पर किये गए कार्य

भारतीय साहित्य की कथानक-रूढ़ियों पर काम करने वाले विद्वानों में मारिस ब्लूमफील्ड का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ब्लूमफील्ड तो हिन्दू-कथा-अभिप्रायों का विश्व-कोश (इनसाइक्लोपिडिया आव हिन्दू फिक्सन मोटिव्स) तैयार करने की बात सोच रहे थे[2] और इसके लिए उन्होंने स्वयं कई लेख लिखे और साथ-ही-साथ अपने शिष्यों और सहयोगियों से भी कई लेख लिखवाये। उनके विचार से भारतीय कथा-साहित्य के सम्यक् और सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए ऐसे अभिप्रायों का अध्ययन और विवेचन जो भारतीय कहानियों में दीर्घ काल से व्यवहृत होते चले आ रहे हैं, अत्यन्त आवश्यक हैं।[3] इस दृष्टिकोण से उन्होंने अपने प्रस्तावित विश्व-कोश के लिए पहले विभिन्न कहानियों में पाये जाने वाले प्रचलित और रूढ़ अभिप्रायों की विवेचना, उनके साहित्यिक महत्त्व, मूल स्रोत तथा इतिहास आदि के सम्बन्ध में अनेक लेख लिखे और लिखवाये, किन्तु दुर्भाग्यवश अचानक उनकी मृत्यु हो जाने के कारण यह कार्य बहुत आगे न बढ़ सका। इस विश्व-कोश की भूमिका में ब्लूमफील्ड का सबसे पहला लेख अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी की छत्तीसवीं जिल्द में प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने 'एक ही साथ हँसना और रोना', 'देव-

---

१. As I have already stated in the introduction, it is the incident in a story which forms the real guide to its history and migration. The plot is of little consequence being abbreviated or embroidered according to the environment of its fresh surroundings.

Penzer—Ocean of Story, vol. I, p. 29.

२. देखिये, 'अमेरिकन जरनल ऑव ओरियण्टल सोसायटी', जिल्द ३६; पृ० ५४

३. Settled conventions in this regard are of prime technical help in the systematical study of fiction, more important than personal preferences, however justified these may be when taken up singly by themselves. Life and Stories of the Jain Savior Parsvanath, p. 183.

दूत श्वेतकोश', 'बोलने वाली गुफा या चट्टान', तथा अन्य अनेक ऐसे ही मानसिक और बौद्धिक चातुर्य-सम्बन्धी अभिप्रायों की संक्षेप में विवेचना की। इसके पूर्व ही उनके दो लेख 'मूलदेव का चरित्र और उसके साहित्यिक कार्य'[१] तथा 'हिन्दू कथाओं में पक्षियों की बातचीत'[२] प्रकाशित हो चुके थे जिसमें उन्होंने साहसिक कार्य-सम्बन्धी तथा पक्षियों की बातचीत-सम्बन्धी कुछ रूढ़ियों पर विचार किया था। इसके अतिरिक्त विभिन्न जर्नलों में उनके निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुए। ये सभी लेख कथानक-रूढ़ियों से सम्बन्धित हैं पर उनमें कुछ का शीर्षक यूरोप अथवा अन्य किसी देश की किसी ऐसी प्रचलित कहानी के आधार पर दिया हुआ है जिसमें वह अभिप्राय प्रयुक्त है।

१—स्त्री की दोहद-कामना—हिन्दू कहानियों का एक अभिप्राय—(दोहद आर क्रेकिंग आव प्रिग्नैण्ट वमन—ए मोटिव आव हिन्दू फिक्शन-जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी, जिल्द ४०, पृ० १)।

२—'परकाय प्रवेश' की कला—हिन्दू कहानियों का अभिप्राय—।

३—दो पक्षियों या अन्य जानवरों, राक्षसों या व्यक्तियों की बातचीत अचानक उनकी अनभिज्ञता में सुन लेना और उससे किसी रहस्य का सुलझ जाना या किसी कार्य में सहायता मिलना। (आन ओवरहियरिंग-एज़ ए मोटिव आव हिन्दू फिक्सन)।

४—जोसेफ और पोटिफर की स्त्री—(जोसेफ एण्ड पोटिफरस वाइफ इन हिन्दू फिक्सन)—यह अभिप्राय घटनात्मक (इन्सीडेण्टल) और कथा को आगे बढ़ाने वाले कौशलों का समुच्चय है। ब्लूमफील्ड ने इस अभिप्राय का यह शीर्षक यूरोप की इस प्रचलित कहानी के आधार पर रख दिया है, क्योंकि इसमें यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है। इस कथानक-रूढ़ि का भारतीय साहित्य में तीन रूपों में उपयोग हुआ है—(१) किसी स्त्री (प्रायः रानी, गुरु-पत्नी या सौतेली माँ) का किसी व्यक्ति—प्रायः शिष्य या पुत्र—से प्रेम-निवेदन, उसका अस्वीकार कर देना, फलस्वरूप बदले की भावना से उस स्त्री का उस व्यक्ति के ऊपर बलात्कार का दोषारोपण और उस व्यक्ति को न्यायालय से मृत्यु-दण्ड या अन्य कोई भयंकर दण्ड मिलना; किन्तु अन्त में चमत्कारिक ढंग से रहस्य का उद्घाटन होना। (२) औरत का बिना किसी प्रकार के प्रेम-निवे-

१. The character and adventure of Muldeo—P. A. P. S. 52 P., 516.

२. On talking birds in Hindu Fiction—Testschrift Ernst Windish······dargbracht, Leipzig 1914, o. 349.

दन के ही, किसी व्यक्ति-विशेष से घृणा के कारण उसको कठिनाई में डालने के लिए उसके ऊपर इस प्रकार का दोष लगाना या (३) जैसा कि बहुत कम होता है, स्त्री का प्रलोभन देना और आदमी का उस प्रलोभन में आ जाना। इस रूढ़ि के उदाहरण 'कथासरित्सागर' (२,६१), 'पार्श्वनाथ चरित' (३,४००-७,४७), 'जातक' (४७२), 'समरादित्य चरित' (२,६१), राल्स्टन द्वारा अनुवादित तिब्बत की कहानियाँ (राल्स्टन टिबटेन टेल्स, पृ० १०२, २०६, २८२)। तथा अन्य अनेक लोक-कथाओं के संग्रहों में मिलते हैं। (ट्रान्जैक्सन आव द अमेरिकन फिलासाफिकल एसोसियेसन, जिल्द ४४, पृ० १४१-१७६)।

(५) कौवा और शाल्मली वृक्ष (द फेबिल आव क्रो एंड द पाम ट्री ए साइकिक मोटिव इन हिन्दू फिक्सन)—यह कहानी 'पंचतन्त्र' में से ली गई है और इस लेख में इसमें आने वाली रूढ़ियों और समानान्तर कथाओं पर विचार किया गया है (अमेरिकन जर्नल ऑव फिलोलाजी, जिल्द ४० पृ० १-२४)। इसके अतिरिक्त भवदेवसूरि-रचित 'पार्श्वनाथ चरित' के अँग्रेजी अनुवाद 'द लाइफ एण्ड स्टोरीज आव जैन सेवियर पार्श्वनाथ' में उन्होंने महत्त्वपूर्ण पाद-टिप्पणियाँ दी हैं तथा पुस्तक में अतिरिक्त टिप्पणी (एडिशनल नोट) द्वारा अनेक प्रचलित और रूढ़ि अभिप्रायों की संक्षिप्त व्याख्या, तथा वे अन्यत्र कहाँ और किस कथा-पुस्तक में प्रयुक्त हुए हैं, इसकी एक लम्बी सूची दी है। सम्भवतः वे इन अभिप्रायों में से प्रत्येक अभिप्राय के सम्बन्ध में अलग-अलग निबन्ध लिखकर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता समझते थे, इसी-लिए इस विषय के जिज्ञासुओं तथा खोज करने वालों की सहायता के लिए उन्होंने उन अभिप्रायों की विस्तृत पुस्तक-सूची-(बिबलिओग्राफिकल समरीज़) मात्र दे दी है। इसमें से अधिकांश अभिप्राय टानी के 'कथा सरित्सागर' के नये संस्करण में, जिसमें पेन्जर ने अनेक संक्षिप्त और विस्तृत टिप्पणियाँ दी हैं, आ गए हैं; इसलिए पेन्जर की अभिप्राय-सूची (मोटिव इण्डेक्स) को उद्धृत करते समय वहीं इस पर विस्तार से विचार किया जायगा।

६—वापस लौटने का वादा (प्रामिस टू रिटर्न)—किसी ऐसे व्यक्ति या जीव से जो मार डालना चाहता हो या जिससे अन्य किसी प्रकार की हानि या संकट की सम्भावना हो, किसी आवश्यक कार्य को कर लेने के बाद पुनः वापस लौटने का वादा करना। लौटकर आने पर निश्चित रूप से किसी-न-किसी प्रकार के संकट (प्रायः जीवन का ही संकट) या हानि की आशंका रहती है, पर होता यह है उस व्यक्ति के पुनः लौटकर आने पर उसकी सचाई के कारण संकट में डालने वाले व्यक्ति को मुक्ति-दान तो देता ही है, कभी-कभी

किसी कठिन कार्य के सम्पादन में सहायता भी करता है।

७—भविष्यसूचक स्वप्न।

८—प्रस्तर-मूर्तियों का जीवित हो जाना।

९—पशु-पक्षी, राक्षस आदि की बातचीत उनकी अनभिज्ञता में सुन लेना और उससे किसी संकट का टल जाना, किसी समस्या का समाधान मिलना या धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति होना आदि। इसे अँग्रेजी में ('मोटिव आव ओव्हर हियरिंग') कहा जाता है।

१०—राजा द्वारा असम्भव तथा कठिन कार्य की सिद्धि के उपहार-स्वरूप आधा राज्य और राजकुमारी देने की घोषणा।

११—पंचदिव्याधिवास या दैवी शक्तियों द्वारा राजा का चुनाव। पाँच दिव्य अधिवास हैं—हाथी, अश्व, चामर, छत्र और कुम्भ। किसी राजा की निस्सन्तान मृत्यु हो जाने पर इन पाँचों को अधिवासित करके अर्थात् दिव्य शक्तियों से युक्त करके राजा के चुनाव के लिए भेज दिया जाता है। उदाहरण के लिए 'पार्श्वनाथ चरित' की कथा को लिया जा सकता है—

तदा तत्र पुरे राज्ञि विपन्ने पुत्र वर्जिते
हस्ति-अश्व-चामरछत्र कुम्भाख्यम् अधिवासितम्
भ्रमत् तत्रायया‌यु दिव्यपंचकम् यत्र सुन्दर:
शीलेन सुन्दर शीघ्रमुपविष्टम् विलोक्यतम्
हयेन हेषितं हस्तिपतिना बृंहितं कृतम्
दुरितज्वाल नायेवापतत कुम्भाम्बु मस्तके
उपरिष्ठात स्थितं छत्रं लुनितं चामरद्वयम्
सा करिन्द्रमथारुह्य दिव्य वेशधरो निशि
मन्त्रयादिभिर्नतो नित्या प्रविष्ट: पुरमुत्सवै:।

'उस नगर (श्रीपुर) के राजा के निस्सन्तान मर जाने पर हाथी, अश्व, चामर, छत्र और कुम्भ जो दिव्य शक्तियों से अधिवासित थे घूमते-घूमते वहाँ पहुँचे जहाँ सुन्दर (वृक्ष के नीचे) सोया हुआ था। सुन्दर के गुणों को देखकर घोड़ा हिनहिनाने लगा, हाथी चिंघाड़ने लगा, दुर्भाग्य को धो डालने के लिए घड़े का जल मस्तक पर गिरने लगा, छत्र मस्तक के ऊपर स्थित हो गया और चामर हिलने लगे। दिव्य वेष धारण करके करीन्द्र पर आसीन होकर, मन्त्रियों से सम्मानित सुन्दर ने रात्रि के समय उस नगर में प्रवेश किया जहाँ इसी प्रसन्नता में अनेक प्रकार के उत्सव हो रहे थे'।

इस रूढ़ि के सम्बन्ध में एजर्टन से 'अमेरिकन जर्नल आव ओरियण्टल

सोसायटी' की ३०वीं जिल्द में (पृ० १४८) विस्तार के साथ विचार किया है, इसके अतिरिक्त मेयर ('हिन्दू टेल्स', पृ० १३१,२१२) और हर्टेल (दस पंचतन्त्र पृ० ३७४ तथा पृ० १४४, १४८, १५५, ३७२, ३७३, ३८२, ३६५) में भी स्वतन्त्र रूप से इस पर विचार किया है। इस रूढ़ि के विषय में एक बात ध्यान रखने की यह है कि कभी-कभी दिव्यपंचकों के स्थान पर केवल हाथी को ही माला देकर छोड़ दिया जाता है और दैवी शक्ति से प्रेरित होकर वह जिस व्यक्ति के गले में माला डाल दे वह राजा मान लिया जाता है।

१२—प्रिया की दोहद-कामना।

१३—विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व—ऐसा अश्व जिसे उल्टी शिक्षा मिली है। (हार्स विद इनवर्टेड ट्रेनिंग) अर्थात् जब रुकना चाहिए तो भाग खड़ा होता है और जब भगाने की कोशिश की जाती है तो रुक जाता है। जैन-कथाओं में इस रूढ़ि का बहुत व्यवहार हुआ है। कथाकार प्रायः राजा या किसी व्यक्ति को ऐसे घोड़े पर सवार कर देता है और फलस्वरूप वह किसी जंगल या उजाड़ नगर आदि में पहुँच जाता है और वहाँ साहसपूर्ण और आश्चर्यजनक कार्य करता है।

१४—यज्ञ, तपस्या अथवा फलादि से सन्तानोत्पत्ति।

१५—स्वर्ण पुरुष—किसी देवी-देवता, यक्ष आदि की सहायता से ऐसे पुरुषों का प्राप्त होना जो सोने के बने हों। इन स्वर्ण पुरुषों की विशेषता यह होती है कि उनके किसी अंग को तोड़कर चाहे जितना भी सोना लिया जाय पर उनमें कोई कमी नहीं होती।

१६—हंस और कौवे की कहानी—पशु-पक्षियों की कहानियों में यह अत्यन्त प्रचलित कहानी है और थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सैकड़ों कथाओं में पाई जाती है। इस कथा में जिन विशेषताओं (ट्रेट्स) और अभिप्रायों का उपयोग किया गया है, वे भी अत्यन्त प्रचलित हैं। 'हितोपदेश', 'जातक', 'कथाकोश' आदि सभी में यह कथा दी गई है।

१७—शिवि मोटिव—अर्थात् दूसरे की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस देना, ब्राह्मण, बौद्ध, जैन सभी कथाओं में इसका उपयोग हुआ है। 'पृथ्वीराज रासो' में भी यह अभिप्राय आया है। 'पृथ्वीराज रासो' की कथानक-रूढ़ियों पर विचार करते समय रूढ़ि के सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया जायगा।

'पार्श्वनाथ चरित' में जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के जीवन-वृत्त के साथ-साथ अनेक कहानियाँ दी हुई हैं, कुछ में तो पार्श्वनाथ के जन्म-जन्मान्तर की

कथा कही गई है और कुछ किसी घटना या सत्य की पुष्टि में उदाहरणस्वरूप कही गई हैं।[१] अधिकांश कथानक-रूढ़ियाँ इन अवान्तर कथाओं में ही पिरोई हुई हैं। कुछ कहानियों के कथानक तो इतने प्रचलित हैं कि थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ 'पंचतन्त्र', 'कथासरित्सागर', 'जैन-कथा-कोश' तथा ऐसे अनेक कथा-संग्रहों में मिल जाते हैं और कुछ प्रचलित अभिप्रायों के आधार पर गढ़ी गई हैं। ब्लूमफील्ड पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने इन समानान्तर कथाओं तथा उनमें प्रयुक्त प्रचलित अभिप्रायों की ओर पुस्तक की पाद-टिप्पणी में संकेत किया है। यहाँ पुस्तक में आई हुई कुछ प्रमुख रूढ़ियों की संक्षेप में चर्चा की जा रही है।

१८—मरुण्ड गरुड़ आदि किसी विशाल पक्षी की पुच्छ आदि में छिपकर सुवर्ण देश अथवा किसी ऐसे देश की यात्रा जहाँ पहुँच सकना मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर की बात है। 'कथा सरित्सागर' में (२६, ३४) शक्तिदेव इसी प्रकार सुवर्ण देश की यात्रा करता है। देवेन्द्र की 'उदयन कथा' में कुमारनन्दिनी अपने को तीन पैरों वाले मरुण्ड पक्षी की बीच की टाँगों में बाँध लेती है और इस प्रकार पंचसेल के सिरेन द्वीप में पहुँच जाती है। 'कथासरित्सागर' (११७,८१) में मनोहरिका एक पक्षी पर चढ़कर विद्याधरों के देश में पहुँच जाती है।

१९—समुद्र-यात्रा के समय प्रायः जल-पोत का टूटना या डूबना और काष्ठफलक के सहारे नायक-नायिका की जीवन-रक्षा। सैकड़ों कथाओं में इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए 'पार्श्वनाथ चरित्र' (२,२६१, २,९-२५, ८,२१०) 'कथासरित्सागर (२५, ४६', ३६, ९९, ५२, ३२८, ६७, ६१) 'दशकुमारचरित' (१,१) 'समरादित्य संक्षेप' (४, ९८, ५, १५५, २१८, २६९, २७८, ३६०, ६, १०६, ७, ५०८) में इसका बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। जायसी ने भी अपने 'पद्मावत' में इस रूढ़ि का बहुत सहारा लिया है और वहीं से कथा दूसरी दिशा को मुड़ गई है और उसमें गति आ गई है। इस

---

१. The stories as a whole as well as the individual motifs, which enter into them, are accompanied or illustrated by reference to parallals, on a scale perhaps not attempted hitherto in connection with any fiction text.

Introduction—Life and Stories of Jain Saviour Parsvanath—page 11, Hopkins University, 1919.

अभिप्राय का उपयोग प्रायः कथा को मोड़ने और आगे बढ़ाने वाले अभिप्राय (प्रोग्रेसिव मोटिव) के रूप में ही किया जाता है।

२०—शुभ अथवा अशुभ शकुन।

२१—उजाड़ नगर का मिलना—उजाड़ नगर की चर्चा कथाओं में बहुत आती है। वस्तुतः यह एक ऐसा अभिप्राय है जिसमें अनेक छोटे-छोटे अभिप्राय (माइनर मोटिव्स) पिरोये रहते हैं और इसका सबसे अधिक प्रयोग लोक-कथाओं में मिलता है, वैसे कथा-साहित्य में इसका उपयोग कम नहीं हुआ है। 'जैन-कथा-कोश' (पृ० १२६), 'कथासरित्सागर' (४३,४६), हर्टेल, डेस पंचतन्त्र (पृ० १०६, नोट ४) पंचदण्ड छत्रप्रबन्ध (२ पृ० २७) और स्विनर्टन की 'पंजाब की रोमाण्टिक कहानियाँ' (रोमाण्टिक टेल्स आव पंजाब) में इस रूढ़ि का उपयोग हुआ है।

२२—आत्म-हत्या करने की धमकी (प्रायः चिता में जलकर या खाना-पीना सब छोड़कर) कथा को बढ़ाने वाला साधारण अभिप्राय (प्रोग्रेसिव माइनर मोटिव) है। ब्लूमफील्ड ने 'प्रभाव चरित' से एक उद्धरण दिया है जिसमें रुक्मिणी अपने पिता से कहती है कि अगर वज्र से विवाह करने की अनुमति उसे नहीं दी जाती है तो वह चिता में जलकर अपना प्राण त्याग देगी।[1] वस्तुतः प्रेम-व्यापारों में ही इस प्रकार की धमकी का अधिक अवसर रहता है। 'पार्श्वनाथ चरित' में इस अभिप्राय का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है।

२३—'संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ कोई न देखता हो'—इस विचार का कहानी-लेखकों ने बहुत उपयोग किया है और बहुत प्राचीन काल से ही कहानी-लेखकों का यह एक प्रिय अभिप्राय रहा है। एक उदाहरण लेकर इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। 'पार्श्वनाथ चरित' (पृ० ४७) में एक कथा आती है जिसमें चीर कदम्ब वसु, पर्वत और नारद तीनों को एक-एक पिष्टकुक्कुट देकर यह आज्ञा देता है कि इसे ऐसे स्थान पर ले जाकर मार डालो जहाँ कोई न देखता हो। वसु और पर्वत ने तो निर्जन स्थानों में ले जाकर उन्हें मार डाला लेकिन नारद ने चारों ओर देखने के बाद यह सोचा कि ऐसा कौन-सा स्थान है जहाँ कोई न सही तो कम-से-कम ईश्वर तो देखता ही है अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ कोई न देखता हो। कोई व्यक्ति होता है जिसकी हत्या ऐसे स्थान पर करने के लिए आज्ञा दी जाती है और हत्या करने वाला यह सोचकर कि ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ कोई

१. Bloomfield—Life and Stories of Jain Savior Parsvanath. Page 83, Hopkins University, 1919.

न देखता हो उस व्यक्ति की हत्या नहीं करता। कुछ कहानियों में हत्या न करने को कहकर कोई ऐसा गर्हित कार्य करने को कहा जाता है, जिसे करना समाज और धर्म के विरुद्ध है। इस रूढ़ि के मूल में ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति और सर्वात्मवाद की भावना काम करती है। महाभारत से ही इस अभिप्राय का प्रयोग हो रहा है।

२४—अमृत फल लाने वाला शुक—शुक अथवा अन्य किसी पक्षी द्वारा समुद्र स्थित किसी द्वीप आदि से ऐसे फल का लाया जाना, जिसमें अमृत फल के समान आश्चर्यजनक गुण हो। यह कथानक-रूढ़ि का बहुत सुन्दर उदाहरण है, क्योंकिइस कथा का पूरा कथानक (प्लाट) या वस्तु-तत्त्व (थीम) ही इतना रूढ़ और प्रचलित हो गया है कि अनेक कथाओं में ज्यों-का-त्यों मिल जाता है। 'पार्श्वनाथ चरित' में आई कथा को ही उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं।

'विन्ध्याचल के वन में एक वृक्ष पर शुकों का एक जोड़ा रहता था और उनके साथ ही एक बच्चा शुक था। एक दिन वह वहाँ से उड़ गया, पर बच्चा होने के कारण जमीन पर गिर पड़ा। किसी ऋषि की दृष्टि उस पर पड़ी, वे उसे उठाकर अपनी कुटिया में ले गए और वहीं पुत्र की भाँति उसका पालन-पोषण किया और शिक्षा दी। एक दिन उस शुक ने तपोवन के एक ऋषि को अपने शिष्यों के बीच यह कहते हुए सुना कि समुद्र के मध्य में हरिमेल नाम का एक द्वीप है जिसके उत्तर-पश्चिम में एक बड़ा आम्रवृक्ष है, जिसके फलों में वृद्ध को युवा बना देने तथा सभी प्रकार की व्याधियों और दोषों को दूर कर देने का गुण है। शुक को अपने माता-पिता की वृद्धावस्था का ध्यान आया और वह उड़कर उस द्वीप में पहुँचा और एक फल अपनी चोंच में लेकर चला, किन्तु लौटते समय वह थककर समुद्र में गिर पड़ा किन्तु फल को नहीं छोड़ा। एक वणिक् ने उसकी रक्षा की और कृतज्ञतावश शुक ने उसे वह फल दे दिया और स्वयं दूसरा लाने चला। उस वणिक् ने वह फल अपने देश के राजा को दिया और राजा ने यह सोचकर कि उसकी सम्पूर्ण प्रजा इससे लाभान्वित हो उसका एक वृक्ष लगवा दिया, किन्तु जब वह वृक्ष फलयुक्त हुआ तो उसके एक फल पर एक सर्प का विष गिर पड़ा जिसे एक पक्षी लिये जा रहा था, विष के कारण वह फल पककर तुरन्त गिर पड़ा। राजा ने अपने एक नौकर को उसे दे दिया और वह उसे खाते ही मर गया। क्रुद्ध होकर राजा ने उस वृक्ष को कटवा दिया किन्तु उसके साथ ही अनेक ऐसे व्यक्तियों ने, जो असाध्य बीमारियों से पीड़ित थे, फलों को खाया और वे निरोग होकर कामदेव के समान सुन्दर हो गए। सत्य का पता चलने पर राजा को बहुत दुःख हुआ।

यही कथा कहीं कुछ विस्तार या संक्षेप में किसी अन्य प्रसंग में कुछ अन्य घटनाओं के साथ मिलाकर कही गई है, किन्तु कथा की प्रमुख विशेषताएँ (मेन ट्रेट्स) सभी जगह समान हैं। सभी स्थानों पर फल लाने वाला कोई-न-कोई पक्षी है। फल भी आवश्यक नहीं कि आम का ही हो, किसी वृक्ष का फल हो सकता है। (२) पक्षी का आश्चर्यजनक गुण वाले फल, उसकी उत्पत्ति के स्थान और प्राप्ति के उपाय आदि के बारे में किसी को बात करते सुन लेना सभी में है। (३) पक्षी का समुद्र में गिरना या कोई अन्य बाधा होना और अपने उद्धारक को वह फल देना और उस व्यक्ति का उस फल को अपने देश के राजा को देना और राजा का उस फल का वृक्ष लगवाना। (४) वृक्ष के फलयुक्त होने पर किसी फल पर विष गिरना, फलस्वरूप उसे खाने वाले की मृत्यु और राजा का क्रुद्ध होकर उसे कटवा देना। अन्य फलों को खाने वालों का अपनी व्याधियों और दोषों से मुक्त होकर पूर्ण युवा और कामदेव के समान सुन्दर होना। (५) सत्य का ज्ञान प्राप्त होने पर राजा को अपने अज्ञानपूर्ण कार्य पर दुःख और पश्चात्ताप।

२५—राजा और उसके मंत्रियों को साथ ही पुत्र उत्पन्न होना और राजकुमार के साहसपूर्ण कार्यों (एडवेन्चर्स) में मन्त्र-पुत्रों का अभिन्न मित्र के रूप में सहायता, सहयोग और परामर्श।

२६—एक जन्म के वैरी (प्रायः भाई) अन्य जन्मों में भी वैरी के रूप में।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ब्लूमफील्ड हिन्दू कथा अभिप्रायों का विश्व-कोश (इनसाइक्लोपिडिया आव हिन्दू फिक्शन मोटिव) तैयार कर रहे थे जिसके लिए वे स्वयं तो कार्य कर ही रहे थे उनके कई शिष्य और सहयोगी इस कार्य में उनकी सहायता कर रहे थे। इस दिशा में काम करने वाले उनके सहयोगियों में डब्ल्यू नार्मन ब्राउन, ई डब्ल्यू बर्लिंगेम और रूथ नार्टिन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन्होंने भारतीय कथानक-रूढ़ियों के सम्बन्ध में 'अमेरिकन जर्नल आव फिलालाजी', 'रायल एशियाटिक सोसायटी का जर्नल' 'साइंटिफिक मन्थली' और 'स्टडीज़ इन आनर आव मि० ब्लूमफील्ड' में कई लेख लिखे। कुछ महत्त्वपूर्ण लेख ये हैं—

२७—सत्यक्रिया—एक प्रकार का हिन्दू मन्त्र और कथाओं में इसका मानसिक अभिप्राय के रूप में प्रयोग (द एक्ट आव ट्रुथ) (सच्चकिरिया) ए हिन्दू स्पेल एंड इट्स इम्प्लायमेंट एज़ ए साइंटिफिक मोटिव इन हिन्दू

फिक्शन)।[1]

२८—जीवन-निमित्त वस्तु या किसी बाह्य वस्तु में प्राण का बसना (द लाइफ़ इण्डेक्स—ए हिन्दू फिक्शन मोटिव)।[2]

२९—भाग्य-परिवर्तन (इस्केपिंग वन्स फेट—ए हिन्दू पैराडाक्स एंड इट्स यूज़ इज़ ए साइकिक मोटिव इन हिन्दू फिक्शन)।[3]

३०—भ्रमण करने वाली खोपड़ी (द वान्डरिंग स्कल)।[4]

३१—व्याघ्रकारी (द लेडी टाइगर किलर—ए स्टडी ग्राव द मोटिव ग्राव ब्लफ इन हिन्दू फिक्शन)।[5]

३२—द्वित्व शब्दों पर ग्राधारित अभिप्राय (इको वर्ड मोटिव)।[6]

३३—(द साइलेंस वेगर)।

३४—(द टार वेबी ऐट होम)।

ब्लूमफील्ड और उनके सहयोगियों के अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से इस विषय पर काम करने वाले यूरोपीय विद्वानों में बेनिफी, टानी, जैकोबी, बेवर और पेंजर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बेनिफी ने 'पंचतन्त्र' की कहानियों पर विशेष रूप से काम किया है और वे भारतीय कथा-साहित्य के बहुत बड़े विशेषज्ञ माने जाते हैं। यद्यपि इस जर्मन विद्वान् के अनेक निष्कर्ष बाद की खोजों और कार्यों द्वारा गलत सिद्ध हो चुके हैं फिर भी अपनी पुस्तक 'डास पंचतन्त्र' (पंचतन्त्र) की भूमिका और अनेक कथाओं के सम्बन्ध में दी हुई महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों में बेनिफी ने जो विचार व्यक्त किये हैं वे आज भी इस दिशा में कार्य करने वाले विद्वानों के लिए बहुत महत्त्व रखते हैं और कुछ अर्थों में पथ-प्रदर्शन का कार्य करते हैं। बेनिफी की विद्वत्ता और विशेषज्ञता का ही यह प्रभाव था कि उनका यह मत कि भारतीय लोक-कथाओं की उत्पत्ति बौद्धों के समय में हुई अभी बहुत बाद तक दुहराया जाता रहा है और भारतीय पशु-पक्षियों की कहानियों (बीस्ट

१. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी—१९१७, पृ० ४२९-४६७।
२. रूथ नार्टन—स्टडीज इन ऑनर ऑफ मारिस ब्लूमफील्ड, पृ० २११-२२४।
३. नार्मन ब्राउन, अमेरिकन जर्नल ऑफ फिलालोजी, जिल्द ४०, पृ० ४२३-४३०।
४. वही।
५. वही।
६. एम० बी० इमन्यू, जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, जिल्द ६४।

फेबल्स) के मूल उत्स ईसप (Aesop) की ग्रीक कहानियाँ हैं।

टानी ने 'कथासरित्सागर', 'जैन कथा कोष' और 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अंग्रेजी अनुवाद में ऐसी अनेक कथाओं और घटनाओं (इन्सिडेण्ट्स) पर विचार किया है जो थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ भारतीय और विदेशी कथा-साहित्य में ज्यों-की-त्यों मिल जाती हैं। किन्तु समानान्तर घटनाओं (पैरेलेल इन्सिडेण्ट्स) का उद्धरण देते समय टानी का ध्यान विशेष रूप से यूरोपीय कथा-साहित्य की ओर रहा है, क्योंकि अपनी टिप्पणियों में उन्होंने इस बात पर विशेष रूप से विचार किया है कि ये कथाएँ और घटनाएँ यूरोपीय कथा-साहित्य में कहाँ और किस रूप में प्राप्त होती हैं, इनका मूल स्रोत क्या है तथा इनका यात्रा का मार्ग क्या है, अर्थात् ये पूर्व से पश्चिम की ओर गई हैं या पश्चिम से पूर्व को ओर गई हैं। वस्तुतः नृतत्त्व-शास्त्र की दृष्टि से इन टिप्पणियों का बहुत अधिक महत्त्व है।

भारतीय कथानक-रूढ़ियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने वाले विद्वानों में ब्लूमफील्ड के बाद सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान पेंजर का ही है। इसका कारण यह है कि पेंजर के पूर्ववर्ती विद्वानों ने इस विषय पर थोड़ी-बहुत सामग्री एकत्र कर दी थी और उन्हें इस कार्य को शुरू से नहीं प्रारम्भ करना था। पेंजर ने ब्लूमफील्ड, बेनिफी, टानी, बेवर, डब्लू नार्मन ब्राउन आदि के लेखों और टिप्पणियों से बहुत सहायता ली और 'कथासरित्सागर' में आई हुई कथानक-रूढ़ियों पर विचार करते समय इनका प्रचुर उपयोग किया। इन्होंने टानी द्वारा अनूदित 'कथासरित्सागर' के नये संस्करण का सम्पादन किया है और उसी संस्करण में इन्होंने अनेक संक्षिप्त और विस्तृत टिप्पणियों द्वारा पुस्तक में आई हुई कथानक-रूढ़ियों पर विचार किया है। पेंजर का कार्य इस अर्थ में विशेष मौलिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जैसा कहा गया है टानी ने स्वयं बहुत सी संक्षिप्त टिप्पणियों द्वारा इस विषय पर विचार किया था। किन्तु पेंजर के कार्य का महत्त्व मौलिकता की दृष्टि से नहीं बल्कि तब तक की प्राप्त सामग्री के आधार पर कथानक-रूढ़ियों का अधिक-से-अधिक वैज्ञानिक, विस्तृत और स्पष्ट अध्ययन प्रस्तुत करने में है। टानी की संक्षिप्त टिप्पणियों पर उन्होंने कई पृष्ठ में विस्तार के साथ विचार किया और साथ ही बहुत सी नई टिप्पणियों को देकर अनेक ऐसी रूढ़ियों पर विचार किया जिनकी ओर टानी का ध्यान नहीं गया था। सच तो यह है कि ब्लूमफील्ड के बाद पेंजर ने ही इतने अधिक कथाभिप्रायों का वैज्ञानिक ढंग से विस्तृत और व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया और जैसा क उन्होंने स्वयं कहा है कि किसी देश के

समूचे साहित्य में बार-बार आने वाले अभिप्रायों (इन्सिडेंट्स) के संकलन और वैज्ञानिक अध्ययन का काम अभी प्रारम्भ होने को हुआ है और उससे भी कम हुआ है इन अभिप्रायों और दूसरे राष्ट्रों की लोक-कथाओं में आने वाले समान अभिप्रायों के तुलनात्मक अध्ययन का काम।[1] इसी आधार पर पेंजर ने 'कथासरित्सागर' में प्रयुक्त अभिप्रायों का विवेचन किया है। प्रस्तुत अभिप्राय 'कथासरित्सागर' के अतिरिक्त भारतीय कथा-साहित्य में अन्य किस स्थान पर और किस रूप में प्रयुक्त हुआ है यह दिखलाने के साथ-ही-साथ उन्होंने इन अभिप्रायों और दूसरे देशों के कथा-साहित्य में पाये जाने वाले अभिप्रायों का तुलनात्मक विवेचन भी किया है। इसीलिए इस दिशा में प्रो० ब्लूमफील्ड और उनके सहयोगियों द्वारा किये गए कार्यों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी इनकी यह शिकायत रही है कि इन विद्वानों ने अपनी खोज को केवल संस्कृत-साहित्य तक ही सीमित रखा है।[2]

पेंजर ने 'कथासरित्सागर' के अन्त में (९वीं जिल्द में) उन सभी अभिप्रायों की एक लम्बी सूची दी है जिन पर उन्होंने पुस्तक में चर्चा की है। यहाँ उन रूढ़ियों की संक्षेप में चर्चा कर लेना अप्रासंगिक न होगा। ये अभिप्राय निम्नलिखित हैं—

(१) सत्यक्रिया या सच्चकिरिया (एक्ट आव ट्रुथ) जैसा कि बर्लिंगम ने कहा है—यह एक प्रकार का हिन्दू मन्त्र बन गया है और भारतीय साहित्य में इसका उपयोग अभिप्राय के रूप में दीर्घकाल से होता चला आ रहा है; जातक-कथाओं का तो यह सर्वस्व ही है और अनेक कहानियाँ केवल

---

१. The scientific study and cataloguing of the numerous incidents which continually recur throughout the literature of a country has scarcely been commenced, much less the comparison of such motifs with similar ones in the folklore of other nations.—Ocean of Story Vol, I, p. 30.

२. Professor Bloomfield of Chicago has, however, issued a number of papers treating of various traits or motifs which occur in Hindu fiction, but unfortunately neither he nor his friends who have helped by papers for his proposed "Encyclopedia of Hindu fiction" have carried their enquiries outside the realm of Sanskrit.—Ocean of Story Vol. I, P. 30.

इस एक 'अभिप्राय' के आधार पर ही खड़ी की गई हैं। किसी निश्चित प्रयोजन की सिद्धि के लिए किसी भी प्रकार के सत्य का कथन और उस कथन की सत्यता के प्रमाणस्वरूप उस प्रयोजन को सिद्ध करने वाली घटना का घटित हो जाना अथवा किसी इच्छा का पूर्ण हो जाना—इस प्रक्रिया को सत्य कथन की क्रिया या सत्यक्रिया कहते हैं। उदाहरण के लिए 'कथासरित्सागर' में एक कथा आती है जिसमें रत्नकूट के राजा रत्नाधिपति का आकाशगामी हाथी गरुड़ की चोंच से घायल होकर जमीन पर गिर पड़ता है और बहुत प्रयत्न करने पर भी उठ नहीं पाता। शीलवती नाम की स्त्री के सत्य-कथन द्वारा कि 'अगर मैंने अपने पति के अतिरिक्त पर-पुरुष को मन में भी कभी न सोचा हो तो हाथ के स्पर्श-मात्र से यह हाथी स्वस्थ हो जाय' हाथी पुनः स्वस्थ और सबल बन जाता है—

स्पृश्याम्यहं करेणैतं स्वभर्तुश्चापरो मया।
मनसापि न चेद्ध्यातस्तदुत्तिष्ठत्वयं द्विपः ॥

बर्लिंगम और पेंजर ने भारतीय साहित्य से अनेक उदाहरणों द्वारा इस रूढ़ि की व्यापकता और उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

(२) प्रिया की दोहद कामना और उसकी पूर्ति के लिए प्रिय का प्रयत्न—स्त्री की दोहद कामना अर्थात् गर्भवती स्त्री के मन में उत्पन्न होने वाली इच्छा स्त्री के जीवन की एक साधारण और परिचित घटना है, किन्तु भारतीय कवियों और कहानी कहने वालों के हाथ में पड़कर यही साधारण घटना अद्भुत रूप धारण कर लेती है। ब्लूमफील्ड ने लिखा है—ऐसा मालूम पड़ता है कि इससे हिन्दू औरतें जिस सीमा तक पीड़ित होती हैं उससे पश्चिम वाले अपरिचित हैं। पति भी इस विषय में बहुत सतर्क रहता है और उस इच्छा को पूर्ण करना अपना कर्तव्य समझता है। इसी दोहद कामना का उपयोग कहानीकारों ने एक अभिप्राय के रूप में किया है। इसकी व्यापकता तो इसीसे समझी जा सकती है कि तिब्बत से लेकर सीलोन तक के समूचे भारतीय साहित्य में अनेक बार ऐसे अभिप्राय का प्रयोग किया गया है और बाद में अनेक अन्य अभिप्रायों की तरह दोहद का भ बिलकुल यान्त्रिक ढंग से कहानियों में उपयोग होने लगा। कहानीकारों के हाथ में पड़कर इस दोहद ने अद्भुत रूप धारण किया है—कहीं स्त्री पति के खून में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है तो कहीं चन्द्र-पान करने की। वस्तुतः कहानीकार जिस दिशा में कहानी को मोड़ना चाहता है अथवा जिस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है उसी के अनुरूप दोहद कामना स्त्री द्वारा करवाता है। उदाहरणार्थ 'कथासरि-

त्सागर' में मृगावती रुधिर से पूर्ण लीलावापी में स्नान करने की दोहद कामना व्यक्त करती है—

ततस्तस्यापि दिवसैः सहस्रानीक भूपतेः
बभार गर्भं पाण्डुमुखी राज्ञी मृगावती
ययाचे साथ भर्तारं दर्शनातृप्तलोचनं
दोहदे रुधिरापूर्ण लीलावापी निमज्जनं ।२।२

(३) ऐसा पत्र जिसमें पत्रवाहक को ही मार डालने का आदेश लिखा हो—जिन कहानियों में इस अभिप्राय का प्रयोग होता है उनका वस्तु-तत्त्व (थीम) प्रायः निम्नलिखित प्रकार का होता है—

किसी कारण नायक मार्ग में बाधक समझा जाता है, फलस्वरूप उसे एक पत्र देकर जिसमें उसीको मार डालने का आदेश लिखा हो किसी विश्वस्त व्यक्ति के पास भेजा जाता है। पर होता यह है कि या तो वह मार्ग में कहीं सो जाता है और कोई व्यक्ति उस पत्र में जान-बूझकर या अनजान में ही परिवर्तन कर देता है या उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी मिल जाता है जो बिना यह जाने कि पत्र में क्या लिखा है पत्र पहुँचाने के लिए तैयार हो जाता है और इस प्रकार नायक की प्राण-रक्षा हो जाती है।

कुछ कहानियों में ऐसा भी होता है कि नायक को पहले ही भेज दिया जाता है और उसके बाद किसी दूसरे व्यक्ति को उक्त आदेश के साथ भेजा जाता है। प्रायः कहानीकार नायक की चमत्कारपूर्ण ढंग से रक्षा करता है। कथा-कोश (टानी, पृ० १६८) में दामनक की कहानी में इस अभिप्राय का सुन्दर रूप प्राप्त होता है।

(४) किसी स्त्री के पास उसके पति का रूप धारण करके जाना—इन्द्र और अहिल्या-सम्बन्धी कथाचक्र (साइकिल आव स्टोरीज़) की प्रचलित कहानी जिसमें इन्द्र गौतम का रूप धारण करके अहिल्या के पास जाते हैं, इस अभिप्राय का प्रचलित उदाहरण है। सम्भव है इसी आदर्श पर इस अभिप्राय ने भारतीय साहित्य में व्यापक रूप धारण किया हो। किन्तु इसका प्रयोग भारतीय साहित्य में ही नहीं अन्य देशों के साहित्य में भी बहुत अधिक मिलता है। बेनिफी ने 'पंचतन्त्र' (भाग १, २६६) में इसके विभिन्न रूपान्तरों की चर्चा की है और दूसरे देशों में पाई जाने वाली उन कथाओं के साथ, जिनमें यह अभिप्राय प्रयुक्त हुआ है, तुलनात्मक दृष्टि से विचार भी किया है। प्रायः सभी रूपान्तरों में स्त्री यह बिलकुल नहीं जानती कि उसके साथ छल किया जा रहा है और अपने वास्तविक पति के लौटने पर पूछती है कि

'अभी तो आप गये हैं, फिर तुरन्त लौट क्यों आये ? क्या मैंने आपकी इच्छा रात्रि के अमुक प्रहर में पूरी नहीं की ?' आदि। 'कथासरित्सागर' (आदिस्तरंग ३४) में कलिंगसेना की कथा इस अभिप्राय का सुन्दर उदाहरण है।

(५) किसी जीवित या मृत मछली अथवा किसी पशु-पक्षी की व्यंग्यात्मक और रहस्यपूर्ण ढंग से हँसी—भारतीय साहित्य में मछली के हँसने की रूढ़ि ही अधिक प्रचलित है और वह भी प्रायः मरी हुई। 'कथासरित्सागर' में भी मरी हुई मछली ही हँसती है। योगनन्द एक बार अपनी रानी को खिड़की से एक ब्राह्मण से बात करते देखता है और क्रोध में तुरन्त उस ब्राह्मण के वध किये जाने की आज्ञा देता है। जिस समय ब्राह्मण वध के लिए ले जाया जाता है बाज़ार में पड़ी हुई एक मृत मछली हँस पड़ती है—

हन्तुं बध्यभुवं तस्मिन्नीयमाने द्विजे तदा।
अहसद्गतजीवोऽपि मत्स्यो विपणिमध्यगः। (५, १६)

और प्रायः मछली हँसती है राजा की मूर्खता पर, जो एक निरपराध व्यक्ति का वध करवाता है और नहीं जानता कि उसके अन्तःपुर में स्त्री-वेश में अनेक पुरुष रहते हैं। ब्राह्मण का वध रोक दिया जाता है। योगनन्द मछली के हँसने का कारण वररुचि से पूछते हैं और वररुचि को इसका कारण दो राक्षसों की बातचीत सुनकर मालूम होता है—

हसितुं किमुतेनेति पृष्टा भूयः सुतैश्च सा
अवोचद्राक्षसी राज्ञः सर्वा राज्ञोऽपि विप्लुता।
सर्वान्तःपुरेष्वत्र स्त्रीरूपाः पुरुषाः स्थिताः
हन्यतेऽनपराधस्तु विप्र इत्यहसत्तिमिः। (५, २४)

इसी प्रकार 'शुक सप्तति' में मरी हुई ही नहीं, बल्कि भोजन के लिए पकाकर लाई हुई मछली हँसती है और इतने ज़ोर से हँसती है कि सारा शहर सुन लेता है। 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और 'प्रबन्ध कोश' में भी इस प्रकार की कहानी दी हुई है, पर वहाँ जीवित मछली हँसती है और दूसरे कारण से हँसती है। लोक-कथाओं में इस अभिप्राय का प्रयोग बहुत अधिक मिलता है।[१]

(६) तन्त्र-मन्त्र या रूप-परिवर्तन की लड़ाई—अधिकांश उदाहरणों में प्रायः इस अभिप्राय के रूप मिलते हैं।

---

१. Knowle's Folk Tales of Kashmir 1888 (p. 484); Jacobi's Indian Fairy Tales 1892, p. 186; Bompas, Folk Lore of Santal Pargana, 1909. p. 70.

(क) कोई मन्त्र जानने वाला किसी व्यक्ति को जानवर बना देता है और जब तक कि दूसरा प्रतिद्वन्द्वी जादूगर या मन्त्र-विद्या में निष्णात उस व्यक्ति का कोई सहायक जानवर रूप में परिणत उस व्यक्ति के गले से मन्त्राभिषिक्त रस्सी को नहीं हटा देता तब तक वह व्यक्ति उसी अवस्था में पड़ा रहता है।

(ख) नायक और जादूगर अथवा नायक के रक्षक और जादूगरों के बीच तन्त्र-मन्त्र की लड़ाई होती है।

वस्तुतः लोक-कथाओं में इस प्रकार की कहानियों की अधिकता है और साहित्य में जहाँ कहीं भी यह अभिप्राय आया है लोक-कथाओं के प्रभाव से ही आया है।[1]

(७) लिंग-परिवर्तन अर्थात् स्त्री का पुरुष, पुरुष का स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाना—यह भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्रचलित और पुराना अभिप्राय है। महाभारत से ही इसका प्रयोग साहित्य में होता आ रहा है। पृथ्वीराज रासो में भी इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है, अतः रासो की कथानक-रूढ़ियों पर विचार करते समय ही इस पर विस्तार से विचार किया जायगा।

(८) परकाय प्रवेश—इसी को 'परशरीरावेश', 'परपुरप्रवेश', देहान्तरावेश या देहान्तावेशप्रवेश को योगः आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है ब्लूमफील्ड ने 'परकाय प्रवेश की कला' पर अमरीकन ओरियण्टल सोसायटी प्रोसीडिंग्स (जिल्द ५४- पृ० १-४३) में एक स्वतन्त्र निबन्ध लिखकर विस्तार के साथ विचार किया है। भारत जैसे देश में जहाँ योग-साधना का इतना अधिक महत्त्व है और जहाँ ऋषि-मुनियों से हर तरह के वरदान प्राप्त होते हैं 'परकाय प्रवेश' जैसी सिद्धि का प्राप्त होना कठिन नहीं। बाद में तो इसे एक प्रकार की विद्या या कला ही मान लिया गया जिसे कोई भी व्यक्ति किसी विशिष्ट व्यक्ति से सीख सकता था। पेंजर के मतानुसार 'परकाय प्रवेश' के विशेष तरीके एक को सक्रिय (एक्टिव) और दूसरे को निष्क्रिय (पैसिव) कह सकते हैं। सक्रिय रूप वह है जिसमें कोई शरीर निर्जीव पड़ा रहता है और उसका अधिकारी व्यक्ति कहीं गया होता है। ऐसे अवसर पर दूसरा व्यक्ति (प्रायः शत्रु) उस शरीर में प्रवेश कर जाता है। ऐसी अवस्था में उस शरीर का वास्तविक अधिकारी बिना शरीर

१. एन शास्त्री के 'डे वेडियन नाइट्स' (पृ० ८-१८), आस्टर्ली, वैतालपचीसी (१७४-७५) और स्विनर्टन के 'इंडियन नाइट्स एण्टर्टेनमेण्ट' में इस अभिप्राय के विभिन्न रूप देखने को मिल सकते हैं।

का हो जाता है और प्रायः उसे बाध्य होकर उस दूसरे व्यक्ति द्वारा त्यक्त शरीर में प्रवेश करना पड़ता है। इसी रूप के अन्तर्गत वे कथाएँ भी आती हैं जिनमें इस विद्या में निष्णात व्यक्ति सोद्देश्य किसी मृत व्यक्ति (प्राय राजा) के शरीर में प्रवेश कर जाता है। 'कथासरित्सागर' में इसी प्रकार इन्द्र-दत्त मृत नन्द के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है और नन्द के रूप में राज्य करता है, किन्तु मन्त्री शकटाल को सन्देह होता है और वह इन्द्रदत्त द्वारा परित्यक्त शरीर को नष्ट करवा देता है। इस प्रकार इन्द्रदत्त नन्द के शरीर में ही स्थायी रूप से रहने के लिए विवश हो जाता है।

निष्क्रिय रूप का सम्बन्ध कथाओं से न होकर दर्शन से है। इसमें कोई व्यक्ति एक प्रकार के हिप्नोटिज़्म द्वारा अपने मन का सम्बन्ध दूसरे व्यक्ति के मन के साथ स्थापित कर लेता है।

ब्लूमफील्ड ने अपने निबन्ध में संस्कृत-साहित्य से अनेक ऐसे उद्धरण दिये हैं जिनमें इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ है। 'कथा-कोश' (टानी पृ० ३६), 'पार्श्वनाथ चरित' (ब्लूमफील्ड ७४-८३) तथा 'वैतालपंचविंशतिका' में इस अभिप्राय के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। लोक-कथाओं में तो इसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।[1]

(६) अलौकिक जन्म—अलौकिक जन्म-सम्बन्धी कहानियाँ प्रत्येक देश के साहित्य में पाई जाती हैं। भारतीय साहित्य में तो इनकी भरमार है। भारतीय साहित्य में प्रायः राजाओं को सन्तान-सुख से तब तक वंचित रहना पड़ता है जब तक किसी देवी, देवता, या ऋषि आदि द्वारा दिये गए फल से उन्हें सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। 'पृथ्वीराज रासो' में यह अभिप्राय आया हुआ है, इसलिए उसी प्रसंग में इस पर विशेष विचार किया जायगा।

(१०) जादू की वस्तुएँ—जिन कहानियों में यह अभिप्राय रहता है उनके रूप प्रायः निम्न प्रकार से होते हैं—

(क) कहानी का नायक किसी को धोखा देकर जादू की कोई वस्तु प्राप्त करता है अथवा (ख) उसीको धोखा देकर उस वस्तु को लिया जाता है। पहले प्रकार में प्रायः वह दो व्यक्तियों को इस प्रकार की वस्तुओं के लिए लड़ता पाता है और उचित निर्णय देने के बहाने उन्हें धोखा देकर उन वस्तुओं

१. विभिन्न रूपों के लिए देखिए, फ्रियर—'ओल्ड डेकेन डेज़', पृ० १०२; जे० एच० नोल्स, डिक्शनरी आव काश्मीरी प्रावर्ब्स, पृ० ६८; बटरवर्थ 'ज़िग-गैज़ जर्नीज़ इन इण्डिया', पृ० १६७; स्टेन एण्ड ग्रियर्सन, 'हातिम्स टेल्स', पृ० ३१।

को प्राप्त कर लेता है। दूसरे प्रकार की कहानियों में नायक के पास पहले से ही कोई ऐसी वस्तु रहती है और दूसरा व्यक्ति छल द्वारा उससे इस रहस्य को जान लेता और बाद में चुरा ले जाता है। 'कथासरित्सागर' (१,३,४६-५२) में आई हुई कहानी पहले प्रकार का अच्छा उदाहरण है।

(११) जीवन निमित्त वस्तु—अथवा किसी बाह्य वस्तु में प्राण का बसना (एक्सटर्नल सोल मोटिव)—निजन्धरी कहानियों का यह इतना प्रिय और प्रचलित अभिप्राय है कि विश्व-भर की लोक-कथाओं में इसका किसी-न-किसी रूप में उपयोग हुआ है। यही कारण है कि अनेक यूरोपीय विद्वानों ने इसकी अपने ढंग से विवेचना और समाज-शास्त्रीय व्याख्या की है।[1] भारतीय साहित्य में इस अभिप्राय का प्रयोग महाभारत से ही होता चला आ रहा है। 'महाभारत' वन-पर्व में वालधि ऋषि के पुत्र मेधावि का प्राण अविनाशी पर्वतों में निवास करता है। उसके अत्याचार से बाद में ऋषि व्याकुल हो उठते हैं और उसके जीवन के 'निमित्त' सभी पर्वतों को भैंसों द्वारा नष्ट करवा देते हैं। उन पर्वतों के नष्ट हो जाने पर मेधावि की मृत्यु हो जाती है। रूथनार्टन ने अपने लेख में इस अभिप्राय के सम्बन्ध में बड़े विस्तार से विचार किया है और उनका मत है कि "इस अभिप्राय का सम्बन्ध प्रधान रूप से लोक-कथाओं से है और साहित्य में प्रायः यह लोक-कथाओं के प्रभाव से ही आता है। इसके साथ-ही-साथ उन अभिप्रायों के वर्ग का है जिनका उपयोग कहानियों में मुख्य रूप से अलंकृति के लिए होता है।"[2]

(१२) कृतज्ञ जन्तु—प्रायः कहानियों में सर्प, व्याघ्र, सिंह आदि जन्तु

---

१. Hartland E. S. The Legend of Perseus, ii, 1-54; Hasting's Encyclopedia of Religion and Ethics VIII 44; W. Clouston: Popular Tales and Fictions, I, 186; Maccull-och, J. A.: The Childhood of Fictions p. 118; G. C. Frazer: The Golden Bough 2nd, edn. XI, 50.

इन विद्वानों ने इस अभिप्राय को 'लाइफ इण्डेक्स', 'सेपरेबल सोल', 'एक्सटर्नल सोल' आदि भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं।

२. The motif belongs to folk-lore and not primarily to literature.........

It does not stand alone as keynote of the story but is one of many motifs employed to ornament the story and is often adcitious.

Studies in honour of Moria : Bloomfield, P. 224.

पूर्वकृत किसी उपकार के बदले में नायक अथवा नायिका की मुसीबत में रक्षा करते हैं अथवा असम्भव प्रतीत होने वाले कार्यों के सम्पादन में उनकी सहायता करते हैं। 'कथासरित्सागर' में वत्सराज उदयन वसुनेमि नामक सर्प की शवर से रक्षा करते हैं और इस उपकार के बदले में वसुनेमि उन्हें मधुर स्वर से युक्त वीणा और ताम्बूल के साथ सदा अम्लान रहने वाली माला और तिलक बनाने की कला देता है—

वसुनेमिरिति ख्यातो ज्येष्ठो भ्रातास्मि वासुकेः
इमां वीणां गृहाण त्वं मत्तः संरक्षितताख्या
तन्त्रीनिर्घोषरम्यां च श्रुतिविभाग विभाजितम्
ताम्बूलीश्च सहाम्लान मालातिलकयुक्तिभिः।

(२,१,८०-८७)

(१३) गूढ़ विज्ञान को समझना (गेसिंग रिडल्स मोटिव)—उदाहरण द्वारा इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। "योगनन्द को एक बार गंगा में एक ऐसा हाथ दिखाई पड़ा जिसकी पाँचों उँगलियाँ सटी हुई थीं। इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर उन्होंने वररुचि से इसका तात्पर्य पूछा। वररुचि ने उस दिशा में दो उँगलियाँ दिखाईं और वह हाथ अदृश्य हो गया। राजा को इससे और अधिक आश्चर्य हुआ, तब वररुचि ने बतलाया कि 'वह हाथ कह रहा था कि पाँच व्यक्ति मिलकर इस संसार में क्या नहीं कर सकते और मैंने दो उँगलियों द्वारा उसे यह बताया कि यदि दो व्यक्ति भी एकत्रित हो जायँ तो संसार में कुछ भी असाध्य नहीं' "—

पंचभिर्मिलितैः किं यज्जगतीह न साध्यते
इत्युक्तवानसौ हस्तः स्वांगुलीः पंचदर्शयन्
ततोस्य राजन्नगुल्यावेते द्वे दर्शिते मया
एकचित्ये द्वयोरेव किमसाध्यं भवेतिति
इत्युक्ते गूढ़विज्ञाने……………।

('कथासरित्सागर', १,१, ११-१२)

(१४) शील-सूचक वस्तु (चेस्टिटी इण्डेक्स)—रूथनार्टन ने इसे भी जीवन-सूचक वस्तु (लाइफ इण्डेक्स मोटिव) के अन्तर्गत ही माना है और उसी का निषेधात्मक रूप कहा है। शील-सूचक वस्तु द्वारा नियुक्त पति-पत्नी को एक-दूसरे के शील (चेस्टिटी) की सूचना मिलती है। 'कथासरित्सागर' में दो स्थानों पर इस अभिप्राय का प्रयोग हुआ। १—गुहसेन और देवस्मिता की कहानी; २—धनदत्त की कथा। गुहसेन और देवस्मिता

दोनों में से प्रत्येक को शिव द्वारा एक रक्ताम्बुज इस चेतावनी के साथ प्राप्त होता है कि अगर इनमें से कोई भी शील का त्याग करेगा तो दूसरे के हाथ का कमल मुरझा जायगा—

द्वे च रक्ताम्बुजे दत्वा स देवस्तावभाषत
हस्ते गृह्णीतमेकैकं पद्ममेतदुभावपि
दूरस्थत्वे च यद्येकं शीलत्यागं करिष्यति
तदन्यस्य करे पद्मं म्लानिमेष्यति नान्यथा।

(२,५,७६-८०)

इसी के अन्तर्गत 'क्षेम-सूचक-वस्तु' का अभिप्राय भी आता है।

(१४) देवदूत श्वेतकेश—बौद्ध और जैन-कथा-साहित्य में इस अभिप्राय का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। 'धर्मदूत' और 'यमदूत' आदि नामों से भी इसे अभिहित किया गया है। इस प्रकार की कहानियों में सिर में एक भी सफेद बाल दिखाई देने पर राजा (या अन्य व्यक्ति) राज्य त्यागकर प्रव्रज्या अथवा तपस्या के लिए चला जाता है। मखादेव जातक की पूरी कहानी इसी अभिप्राय को लेकर निर्मित हुई है। इन कहानियों में प्रायः राजा की ओर से यह पहले ही से कहा गया रहता है कि "यदा मे सम्म कप्पक-सिरस्मिं फलितानि पस्सेयासि अथ मे आरोचेय्यासीति।" मखादेव जातक की कहानी को ही उदाहरणस्वरूप ले सकते हैं—

"विदेहराज्यान्तर्गत मिथिला के राजा मखादेव ने एक दिन अपने कल्पक से कहा कि 'हे सौम्य कल्पक! जब हमारे सिर में पके बाल देखना, मुझे सूचित करना।' बहुत दिनों बाद एक दिन राजा के बिलकुल काले बालों के बीच एक सफेद बाल दिखाई पड़ा। कल्पक ने राजा की आज्ञानुसार सोने की चिमटी से उसको उखाड़कर राजा के हाथ पर रखा। उस समय राजा को चौरासी वर्ष की आयु बाकी थी। ऐसा होने पर भी पके बाल को देखकर राजा को ऐसा वैराग्य हुआ मानो यमराज आकर समीप खड़े हो गए हों। उनके शरीर में अन्तर्वाह उत्पन्न हो गया और शरीर से ऐसा पसीना छूटने लगा कि कपड़े को निचोड़कर निकालने योग्य हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि आज ही निकलकर संन्यास लेना चाहिए। मन्त्रियों द्वारा संन्यास का कारण पूछे जाने पर उन्होंने कहा—

उत्तमंगरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा।
पातु भूता देवदूता, पब्बज्जा समयो ममाति॥

अर्थात् हमारे सिर पर उगने वाले और वय को हरण करने वाले ये देवदूत

प्रकट हो गए हैं। अब हमारा प्रव्रज्या का समय है। इस प्रकार उन्होंने उसी दिन राज्य त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया।"

(१६) विरह दशाओं का वर्णन—विरह की विभिन्न दशाओं का वर्णन काव्य-रूढ़ि के साथ ही कथानक-रूढ़ि भी है और इस अभिप्राय का उपयोग कहानियों में मुख्य रूप से अलंकृति के लिए ही किया जाता है। भारतीय साहित्य में नायक अथवा नायिका का वियोग-व्यथा से प्रायः मूर्च्छित हो जाना ही अधिक प्रचलित है जब कि यूरोपीय साहित्य में इस अभिप्राय का सबसे प्रिय रूप नायक अथवा नायिका में से किसी एक की स्वाभाविक या अस्वाभाविक मृत्यु का होना और दूसरे का आत्म-हत्या कर लेना या शोक में मर जाना रहा है। अन्त में प्रिय और प्रेमी दोनों एक ही कब्र में दफनाए जाते हैं।[१]

(१७) निर्धन व्यक्ति का वरदानादि द्वारा धनी हो जाना।

(१८) सांकेतिक भाषा—भारतीय कथा-साहित्य में 'स्त्रियों द्वारा विभिन्न वस्तुओं अथवा शारीरिक चेष्टाओं और मुद्राओं के संकेत से अपने प्रिय को किसी बात से अवगत कराने की रूढ़ि का बहुल प्रयोग हुआ है। इसके साथ-ही-साथ सांकेतिक भाषा का अन्य प्रसंगों में भी बहुत प्रयोग मिलता है। उस रूढ़ि का 'पृथ्वीराज रासो' में भी प्रयोग हुआ है, अतः इन सभी रूपों पर आगे विस्तार से विचार किया जायगा।

(१९) अन्य असम्भव क्रिया-व्यापार आदि के उदाहरण द्वारा किसी वस्तु, अथवा क्रिया-व्यापार की असंभाव्यता सिद्ध करना—इस अभिप्राय का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण जातक (२०८) की 'लोहा खाने वाला चूहा' कहानी है। यही कहानी 'कथासरित्सागर' में भी दी हुई है और वह इस प्रकार है—"एक बार कोई वणिकपुत्र सहस्रपल लोहे से निर्मित एक तराजू किसी वणिक मित्र के यहाँ रखकर विदेश चला गया। वापस लौटकर जब उसने अपनी तराजू माँगी तो उस वणिक ने उत्तर दिया कि 'उस तराजू का लोहा इतना मीठा था कि उसे चूहा खा गया।' वणिक पुत्र ने उस समय कुछ नहीं कहा, केवल भोजन का प्रबन्ध कर देने की प्रार्थना की जिसे मित्र ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। भोजन के पहले वह नदी को स्नान के लिए गया और अपने साथ उस बनिये के लड़के अर्भक को भी लेता गया। स्नान के बाद लड़के को अपने किसी मित्र के घर छिपाकर वह लौट आया। लौटने पर जब वणिक ने पूछा कि 'मेरा पुत्र कहाँ है' तो उत्तर मिला कि 'उसे एक चील उठा

१. Penzer—The Ocean of Story, Page 9.

ले गई। मित्र बड़ा नाराज हुआ और दोनों राजा के पास गये। राजा के पूछने पर भी वणिकपुत्र ने वही उत्तर दिया। सभासदों ने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि अर्भक को चील उठा ले जाय। इस पर वणिकपुत्र ने उत्तर दिया कि जिस राज्य में लोहे की महातुला को चूहा खा सकता है वहाँ हाथी तक को चील उठा ले जा सकती है; अगर अर्भक को उठा ले गई तो क्या आश्चर्य है ?

> मूषकैर्भक्ष्यते लौही देशे यत्र महातुला
> तत्र द्विपमपि श्येनो नयेत्किं पुनरर्भकम्।" (१०,४,२४७)

'कथासरित्सागर' में इस अभिप्राय से सम्बन्धित अनेक कहानियाँ हैं और इन सब पर पेंजर ने अच्छी तरह विचार किया है। दूसरी पुस्तकों से भी उदाहरण दिये गए हैं।

(२०) प्राण-रक्षा के लिए अज्ञान बनना—'कथासरित्सागर' (२,१,९९-१०२) में दी हुई सिद्धकरी और डोम की कहानी इस अभिप्राय का अच्छा उदाहरण है।

(२१) मन्त्र-सूत्र—मनुष्य के गले में मन्त्र-सूत्र बाँधकर उसे बन्दर या अन्य पशु-पक्षी के रूप में परिवर्तित कर देना। 'कथासरित्सागर' (७,३) में सुखशया नामक योगिनी सोमस्वभिन को इसी प्रकार बन्दर बना देती है, क्योंकि वह बन्दर से मनुष्य और मनुष्य से बन्दर बनाने का मन्त्र जानती है—

> द्वौस्तो मंत्रप्रयोगौमे मयोरेकेन सूत्रके
> कण्ठबद्धे झागित्येव मानुषो मर्कटो भवेत।
> द्वितीयेन च मुक्तेऽस्मिन् सूत्रके सैव मानुसः
> पुनर्भवेत् कपित्वे च नास्य प्रज्ञा विलुप्यते।

वस्तुतः इसे 'रूप-परिवर्तन' के अभिप्राय का ही एक प्रकार मानना चाहिए, किन्तु भारतीय साहित्य में मंत्र-सूत्र द्वारा रूप-परिवर्तन की बात अधिक प्रचलित होने के कारण पेंजर ने इसे एक अलग अभिप्राय मान लिया है।

(२२) नायक के असामान्य कार्य—नायक के जीवन को संकट में डालने के लिए या अन्य किसी उद्देश्य से असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य सौंपना। ऐसी कहानियों में नायक प्रायः किसी अलौकिक शक्ति-संपन्न व्यक्ति की सहायता से ऐसे कार्य कर देता है और अन्त में उसका मुख्य उद्देश्य पूर्ण हो जाता है।

(२३) अभिमंत्रित वस्तुओं द्वारा मार्ग-विरोध—लोक-कथाओं का यह अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। प्रायः कहानियों में राक्षस आदि नायक का पीछा

करते हैं और वह किसी दूसरे राक्षस, राक्षसी या मन्त्र जानने वाले की सहायता से प्राप्त अभिमन्त्रित वस्तुओं द्वारा उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। मिट्टी फेंकने से पर्वत खड़ा हो जाता है, जल फेंकने से महानदी उत्पन्न हो जाती है और इसी प्रकार जो भी वस्तु फेंकी जाती है वह बृहद् आकार धारण कर लेती है।

(२४) कक्ष-विशेष में प्रवेश-निषेध—इस अभिप्राय के सम्बन्ध में सिडनी हार्टलैण्ड ने फोकलोर जर्नल की तीसरी जिल्द में विस्तार के साथ विचार किया है। ऐसी कहानियों में नायक को किसी विशेष कमरे में (एक या कई) न जाने की चेतावनी दी जाती है, किन्तु वह कुतूहलवश वहाँ जाता है और वहाँ जाने से कोई-न-कोई असामान्य घटना अवश्य घटित होती है। चूँकि यह अभिप्राय विश्व के हर भाग में अत्यधिक प्रचलित है इसलिए अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने इस पर विचार किया है। डब्लू किर्बी ने 'फोकलोर जर्नल' की पाँचवीं जिल्द (पृ० ११२-१२४) में और क्लाउस्टन ने 'पापुलर टेल्स एण्ड फिक्शन' के पहले भाग (१६८-२०५) में इस अभिप्राय के सम्बन्ध में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं।

(२५) अभिज्ञान या सहिदानी—मुद्रिका आदि द्वारा अभिज्ञान भारतीय साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अभिप्राय है और सम्भवतः इसका सबसे सुन्दर उदाहरण कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तल' है। मुद्रिका द्वारा ही दुष्यन्त को शकुन्तला का अभिज्ञान होता है और वहीं से कथा दूसरी दिशा को मुड़ जाती है। 'कथासरित्सागर' में मुद्रिका देखकर भद्रा को विदूषक की याद आती है।

(२६) पशु, पक्षी, राक्षस आदि की बातचीत द्वारा किसी रहस्य का उद्घाटन या कार्य-विशेष में सहायता।

(२७) वापस लौटने का वादा।

(२८) अज्ञान में हुए अपराध के कारण देवी, देवता, ऋषि आदि का शाप—इस रूढ़ि का 'पृथ्वीराज रासो' में भी व्यवहार हुआ है। उसी प्रसंग में इस पर विशेष विचार होगा।

(२९) स्वामिभक्त सेवक—'हितोपदेश' (जान्सन का अनुवाद, पृ० ८९७) में ब्राह्मण वीरवर की कहानी इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। यही कहानी 'कथासरित्सागर' में भी दी हुई है। इस प्रकार की और भी कई कहानियाँ 'कथासरित्सागर' में हैं। सभी में स्वामि-भक्त सेवकों का आत्म-बलिदान मुख्य घटना है।

(३०) कुतिया और मिर्च मिला हुआ माँस खण्ड—पेंजर ने इस अभिप्राय का यह शीर्षक 'कथासरित्सागर' में आई हुई देवस्मिता की कहानी की इस घटना के आधार पर रख दिया है। इस कहानी में एक वणिकपुत्र देवस्मिता नाम की एक कुलीन स्त्री को प्राप्त करना चाहता है। वह इस कार्य में कुशल एक प्रव्राजिका से सहायता लेता है। प्रव्राजिका एक दिन देवस्मिता से मिलने जाती है। देवस्मिता के द्वार पर बँधी कुतिया को देखकर प्रव्राजिका को एक चाल सूझ जाती है और दूसरे दिन वह मिर्च मिला हुआ मांस का टुकड़ा ले जाकर उस कुतिया को दे देती है। इसके बाद देवस्मिता के कमरे में जाकर वह जोर-जोर से रोने लगती है और कारण पूछे जाने पर उस कुतिया की ओर संकेत करती है जिसकी आँखों से मिर्च के कारण आँसू बहता रहता है। कुतिया के रोने का कारण बताते हुए वह कहती है कि पूर्व-जन्म में दोनों एक ही पति की पत्नियाँ थीं, और पति की अनुपस्थिति में उसने तो अपने प्रेमी की इच्छा पूरी की, पर दूसरी ने (जो इस जन्म में कुतिया है) ऐसा नहीं किया। स्वाभाविक वासना की प्रवृत्ति को दबाने के कारण ही वह इस जन्म में कुतिया के रूप में पैदा हुई है और प्रव्राजिका को देखकर चूँकि उसे पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया है, इसलिए वह रो रही है। देवस्मिता उसकी चाल को समझ जाती है और प्रव्राजिका को शिक्षा देने के लिए एक प्रेमी की माँग करती है।

इस प्रकार इस कहानी में किसी दूसरी स्त्री द्वारा किसी प्रेमी के प्रेम-निवेदन को अस्वीकार किए जाने के दुष्परिणाम को दिखाकर किसी स्त्री को प्रेमी की इच्छा-पूर्ति के लिए राजी करना ही मुख्य घटना है और इसी अभिप्राय को लेकर यह कहानी निर्मित हुई है। भारतीय कथा-साहित्य में इस घटना (अभिप्राय) का कई स्थानों पर और कई रूपों में प्रयोग किया गया है। स्त्रियों के छल और कपट-सम्बन्धी प्रायः प्रत्येक कथा-चक्र में इसका उपयोग किया गया है। 'कथासरित्सागर' में नैतिक उद्देश्य के कारण देवस्मिता इस जाल में नहीं फँसती, बल्कि कुटनी और प्रेमी की ही दुर्गति करती है; किन्तु अन्य कहानियों में मध्यस्थ इस चाल द्वारा अपने उद्देश्य में सफल हो जाते हैं। इसके विभिन्न रूपान्तरों के लिए 'शुकसप्तति',[1] फोकलोर सोसायटी १८-८२ क्लाउस्टन की पुस्तक 'बुक आव सिन्दिबाद' (पृ० ५८-६१) को देखा जा सकता है।

१. Vol. II, p. 23 of the translation by R. Schmidt.

(३१) मन्त्राभिषिक्त जल आदि द्वारा मृत व्यक्ति का पुनः जीवित हो जाना।

(३२) किसी स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले प्रेमियों की उस स्त्री द्वारा दुर्गति—(एनट्रेप्ड सूटर्स मोटिव) इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कहानियाँ प्रायः निम्नलिखित प्रकार की होती हैं—

किसी स्त्री का पति किसी कार्य से बाहर रहता है। ऐसे अवसर पर कुछ प्रेमी प्रायः किसी कुटनी आदि की सहायता से उसे प्राप्त करना चाहते हैं। स्त्री भी पहले तो यही दिखलाती है कि वह भी उन्हें उसी प्रकार चाहती है, किन्तु जब वे प्रेमी इस धोखे में उसके घर जाते हैं तो वह किसी-न-किसी उपाय से उनकी दुर्गति करती है। एक उदाहरण द्वारा इसे अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। 'कथासरित्सागर' (लम्बक ४) में उपाकोशा की कहानी को ही उदाहरण के लिए ले सकते हैं। उपाकोशा के पति की अनुपस्थिति में चार प्रेमी उससे प्रेम-निवेदन करते हैं। गंगा-स्नान के लिए जाते समय उसे देखकर राजपुराधस, दण्डाधिपति और कुमार सचिव उस पर मुग्ध हो गए। संयोग से उस दिन लौटने में उसे अधिक देर हो गई। लौटते समय कुमार सचिव ने उसे पकड़ लिया। प्रत्युत्पन्न बुद्धि वाली उस स्त्री ने उस प्रेमी से कहा कि "इस प्रकार मार्ग में बल-प्रयोग करने से दोनों संकट में पड़ सकते हैं; अब उचित यही है कि रात्रि में तुम मुझसे मिलो। इसी प्रकार अन्य दो व्यक्तियों को भी उसने रात्रि में ही मिलने के लिए निमन्त्रित किया। घर जाकर उसने उस ब्राह्मण को बुलवाया जिसके यहाँ उसका पति अपनी सम्पत्ति इस आदेश के साथ रख गया था कि जब भी उपाकोशा को आवश्यकता पड़े उसे रुपये दे देना। ब्राह्मण ने शर्त रखी कि यदि उपाकोशा उसकी प्रेमाभिलाषा को पूर्ण करे तभी वह रुपया दे सकता है। उपाकोशा बड़ी भयंकर स्थिति में पड़ गई, किन्तु उसने बुद्धिमानी से काम लिया। उसको उसी दिन रात्रि में उसने मिलने के लिए बुलाया। उस रात्रि में उनके आने के पूर्व ही जल का एक कुण्ड बनवाकर उसे काजल और तेल से भर दिया तथा उसमें कुछ कस्तूरी आदि भी मिला दिया ताकि किसी को संदेह न हो और अपनी दासी को तेल और काजल लगे हुए चार चिथड़े लेकर तैयार रहने के लिए कहा। रात्रि के प्रथम प्रहर में कुमारामात्य आये। उनसे कहा गया कि जब तक आप स्नान नहीं कर लेते तब तक मैं आपसे नहीं मिल सकती। दासी उन्हें एक गुप्त कमरे में लिवा गई और उनके शरीर पर से सभी वस्त्र आभूषण आदि उतरवा दिये और वही चिथड़ा पहनने के लिए

दिया और उसके शरीर में वही कस्तूरी मिश्रित जल और तेल यह कहकर लगाया कि अत्यन्त सुन्दर लेप है। इसी बीच रात्रि के दूसरे प्रहर में राजपुरोहित भी पधारे। राजपुरोहित के आने पर कुमार सचिव से कहा गया कि उपाकोशा के पति के मित्र आये हैं, अतः आप सन्दूक के अन्दर छिप जाइए। तदनुसार कुमार सचिव सन्दूक के अन्दर बैठ गए और सन्दूक बन्द कर दिया गया। यही चाल अन्य दो प्रेमियों के साथ भी चली गई। प्रातःकाल सन्दूक राजा के पास ले जाया गया और वहाँ राज-दरबार में खोला गया। राजा ने उपाकोशा के सतीत्व की प्रशंसा की और उन सभी व्यक्तियों को राज्य से निष्कासित कर दिया।

(३३) अप्सराओं के वस्त्र-हरण द्वारा किसी रहस्य का पता चलना—अप्सराओं के वस्त्र-हरण द्वारा अज्ञात-से-अज्ञात बात की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, यह विश्वास भारतीय कहानियों में कई स्थानों पर व्यक्त किया गया है। 'कथासरित्सागर'[1] में मरुभूति को नरवाहनदत्त का पता इसी प्रकार चलता है। मरुभूति नरवाहनदत्त को ढूँढ़कर थक जाता है और पता नहीं चलता कि वे कहाँ और किस रूप में हैं। वन में जलाशय के किनारे उसकी भेंट एक ऋषि से होती है, किन्तु ऋषि भी नरवाहनदत्त के बारे में नहीं बता पाते; किन्तु ऋषि इतना अवश्य बताते हैं कि यहाँ इस जलाशय में स्नान करने के लिए कुछ अप्सराएँ आएँगी, उनमें से एक का वस्त्र चुरा लेने पर तुम्हें नरवाहनदत्त का पता लग जायगा। मरुभूति ने यही किया और उसे उस अप्सरा द्वारा नरवाहनदत्त के बारे में पूरी बात मालूम हो गई।

(३४) अपने से बड़े के पास भेजना—प्रायः कहानियों में नायक किसी अज्ञात देश अथवा अज्ञात वस्तु की प्राप्ति के स्थान को जानने के लिए किसी ऋषि या उसी प्रकार की अद्भुत शक्ति रखने वाले व्यक्ति के पास जाता है। वह व्यक्ति उसे अपने से किसी बड़े (भाई, बहन आदि) के पास भेजता है। फिर वह व्यक्ति भी उसे अपने से बड़े के पास भेजता है। (इसी प्रकार प्रत्येक यह कहता है कि मैं तो नहीं जानता हूँ, सम्भव है मेरा बड़ा भाई (किसी भी प्रकार बड़ा) इसे जानता हो। इसे अंग्रेजी में ('ओल्डर एण्ड ओल्डर मोटिफ') के नाम से विद्वानों ने अभिहित किया है।

(३५) परित्यक्त बालक—किसी निर्जन स्थान में परित्यक्त बालकों की चर्चा कथाओं में प्रायः आती है।

(३६) किसी मूर्ख व्यक्ति द्वारा अनजान में किये गए किसी कार्य से

१. लम्बक १०८।

चोरों का पता लग जाना—'कथासरित्सागर' में हरिशर्मन की कहानी इस अभिप्राय का अच्छा उदाहरण है।[1] इस प्रकार की कहानियों में कोई मूर्ख व्यक्ति आदर प्राप्त करने के लिए छल द्वारा अपने को अलौकिक ज्ञान रखने वाला सर्वज्ञ सिद्ध करता है। हरिशर्मन भी स्थूलभद्र द्वारा निरादृत होने पर सोचता है कि अलौकिक ज्ञान सम्पन्नता का ढोंग किये बिना आदर पाना कठिन है। वह एक दिन स्थूलभद्र का घोड़ा चुराकर कुछ दूर ले जाकर छिपा देता है, प्रातःकाल खोज होने पर घोड़ा नहीं मिलता तो स्थूलभद्र बहुत दुःखी होता है। हरिशर्मन की स्त्री से उसे पता चलता है कि हरिशर्मन ज्योतिष-विद्या जानता है। हरिशर्मन बुलाया जाता है; बहुत गणना आदि करके वह बताता है कि घोड़ा अमुक दिशा में है। वह तो जानता ही था; जिस स्थान पर हरिशर्मन ने बताया वहीं घोड़ा मिल गया। हरिशर्मन का सम्मान बढ़ा। कुछ दिन बाद ऐसा हुआ कि राजा के महल से हीरे-जवाहरात चुरा लिये गए। हरिशर्मन चोरों का पता लगाने के लिए बुलाये गए। हरिशर्मन मुसीबत में पड़ गए। उन्होंने समय माँगा और घर जाकर अपनी उस जिह्वा को धिक्कारने लगे जिसके कारण उनकी यह दशा हुई। संयोग कि महल में रहने वाली जिह्वा नाम की नौकरानी उस समय हरिशर्मन के कमरे के पास ही खड़ी होकर देख रही थी कि यह व्यक्ति क्या करता है। उसी ने अपने भाई की सहायता से जवाहरात चुराए थे। अपना नाम सुनकर उसे विश्वास हो गया कि हरिशर्मन अलौकिक ज्ञान वाला व्यक्ति है और उसे सब पता है। वह हरिशर्मन के पास जाकर क्षमा माँगने लगी। अनायास ही हरिशर्मन को चोर का पता लग गया।

(३७) कुलटा स्त्रियाँ—(डिसीटफुल वाइव्ज़) भारतीय साहित्य में इस प्रकार की कहानियाँ बहुत मिलती हैं जिनमें प्रायः पति को धोखा देकर कोई स्त्री (प्रायः) घर के ही नौकर आदि किसी नीच जाति के व्यक्ति के पास जाती है। इन सभी कहानियों में वह व्यक्ति उस स्त्री को देर से आने के कारण मारता है; किन्तु स्त्री इसका तनिक भी प्रतिवाद नहीं करती। रात्रि में नायिका जिस समय चुपके से उठकर अपने प्रेमी से मिलने जाती है, नायक भी आहट पाकर उसके साथ हो लेता है और उसे अपनी पत्नी के रहस्यमय प्रेम का पता लग जाता है।

(३८) गणिका द्वारा दरिद्र नायक का स्वीकार और गणिका माता द्वारा तिरस्कार।

१. लम्बक ३०।

(३९) भावी प्रिया को स्वप्न में देखना और प्राप्ति के लिए उद्योग करना—स्वप्न में किसी सुन्दरी को देखकर उस पर मुग्ध होना और उसे प्राप्त करने के लिए उद्योग भारतीय प्रेम-कथाओं का अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। सैकड़ों कहानियों में इसका उपयोग किया गया है। पेंजर ने इसे अपनी अभिप्राय-सूची में तो नहीं दिया, किन्तु टानी के 'कथासरित्सागर' के अनुवाद की पाद टिप्पणी में इस अभिप्राय पर विचार किया गया है।

ब्लूमफील्ड, बेनिफी, टानी, डब्लू नार्मन ब्राउन, पेंजर के अतिरिक्त कुछ अन्य यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने भी इस दिशा में कार्य किया है। जैकोबी ने परिशिष्ट-पर्बन की भूमिका में पुस्तक में आई प्रचलित घटनाओं (इन्सीडेन्ट्स) के सम्बन्ध में पाद-टिप्पणी में संकेत किया है। कीथ ने अपने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में यूरोपीय तथा भारतीय कहानियों में प्रयुक्त होने वाले कुछ अभिप्रायों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया है।

हिन्दी में सबसे पहले डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य-का आदिकाल' में भारतीय कथाओं में प्रयुक्त होने वाली कुछ प्रमुख कथानक-रूढ़ियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। द्विवेदीजी सम्भवतः पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने परवर्ती ऐतिहासिक काव्यों के सम्यक् मूल्यांकन के लिए इन कथानक-रूढ़ियों के उचित अध्ययन का महत्त्व प्रतिपादित किया।

३

कथानक-रूढ़ियों के मूल स्रोत

कथानक रूढ़ियों अथवा अभिप्रायों का अध्ययन प्रत्यक्ष रूप से प्राचीन पौराणिक और लोक-प्रचलित कथाओं से है, जिनका अध्ययन तुलनात्मक पुराणशास्त्र और नृतत्त्वशास्त्र के अंतर्गत किया जाता है। प्राचीन शिष्ट साहित्य के भीतर उन पौराणिक और लोक-कथाओं के जिन कथा-तत्त्वों को अत्यधिक ग्रहण किया गया और जिनकी पुनरावृत्ति बहुत अधिक हुई वे ही कथानक-सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन गईं। अतः उन रूढ़ियों के मूल उत्स की जानकारी के लिए हमें पौराणिक कथाओं और लोक-कथाओं के मूल स्रोतों को जानना आवश्यक है।

ऐण्ड्रूलैंग ने अपनी पुस्तक 'रीति-रिवाज और पौराणिक विश्वास' (कस्टम ऐंड मिथ) में पौराणिक, निजन्धरी और अन्य लोकप्रचलित कथाओं को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा है—

(१) प्रकृति-सम्बन्धी लोक-कथाएँ—जिनमें प्रकृति की शक्तियों और वस्तुओं से सम्बन्धित जिज्ञासा की शान्ति और उनकी व्याख्या कथा के माध्यम से प्रतीकात्मक पद्धति में की गई रहती है।

(२) रीति-रिवाज-सम्बन्धी कथाएँ—जिनके मूल स्रोत दूर-दूर तक प्रचलित सामाजिक प्रथाएँ और लोक-विश्वास होते हैं।

(३) देवता और पशु का सम्बन्ध व्यक्त करने वाली कथाएँ—ऐसी कथाएँ प्रारम्भिक मानव की कल्पना पर आधारित होती हैं।

(४) जादू-टोना में प्रयुक्त होने वाली जड़ी-बूटी या पेड़-पौधों से सम्बन्धित कथाएँ—ये कथाएँ सुदूरवर्ती भूभागों के जनसमाज और साहित्य में परस्पर मिलती-जुलती-सी पाई जाती हैं। इसके प्रधानतः दो कारण हैं : (१) सभी देशों की प्राचीन आदिम जातियों को समान परिस्थितियों से होकर गुज़रना पड़ा था तथा सबके ऐतिहासिक विकास का क्रम प्रायः एक-सा रहा, अतः

समान परिस्थितियों और विकास की अवस्थाओं के कारण विभिन्न जातियों में प्रचलित कथाओं के मूल तत्त्वों या अभिप्रायों में समानता दिखाई पड़ती है। (२) इसके अतिरिक्त इस समानता का एक कारण यह भी है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही विभिन्न मानव जातियों के बीच युद्ध या मैत्री के माध्यम से परस्पर भावों, विचारों, रीति-रिवाजों और भौतिक पदार्थों का आदान-प्रदान होता रहा है। विभिन्न कबीलों के बीच युद्ध होते थे और जो कबीला पराजित होता था उसके पुरुष विजयी कबीले द्वारा गुलाम बना लिये जाते थे और स्त्रियाँ छीन ली जाती थीं। ये नये ग्रहण किये गए व्यक्ति दूसरे कबीले में अपने कबीले के रीति-रिवाजों, विश्वासों और कथाओं को साथ ले जाते थे। भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को जीवित रखने के प्रयत्न में प्राचीन कबीले दूर-दूर के स्थानों में घूमते भी रहते थे। इस प्रकार प्राचीन लोक-कथाएँ और लोक-विश्वास दूर-दूर तक के भूभागों के निवासियों में थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ फैल गए। बाद में व्यापारियों, घुमक्कड़ों और धर्म-प्रचारकों के माध्यम से भी सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा। जातक और पञ्चतन्त्र की कथाओं के पश्चिमी एशिया और यूरोप के देशों में फैलने तथा ईसप आदि की कथाओं की उनसे समानता होने का यही रहस्य है।

सुदूरवर्ती देशों में व्याप्त और एक ही देश में विभिन्न कालों में विकसित कथाओं के वे छोटे-से-छोटे तत्त्व जो कथा के घटना-प्रवाह को मोड़ने और बढ़ाने वाले होते हैं, बार-बार प्रयुक्त होने के कारण रूढ़ हो गए हैं और इसीलिए उन्हें कथानक-रूढ़ि कहा जाता है। वे तत्त्व कथाओं के उपर्युक्त मूल स्रोतों से ही सम्बद्ध हैं। पर हजारों वर्षों के मानव-विकास के इतिहास में उन तत्त्वों में भी विकास, अभिवृद्धि और रूप-परिवर्तन होता रहा है। पिछले अध्याय में उन तत्त्वों का स्वरूप-निर्देश किया जा चुका है। यहाँ उनके मूल स्रोतों के सम्बन्ध में विचार किया जायगा। यद्यपि कथानक-रूढ़ियों के मूल-स्रोतों का अध्ययन प्रधानतया नृतत्त्व-शास्त्र या समाज-शास्त्र का विषय है, पर प्रस्तुत निबन्ध में वह इसलिए आवश्यक है कि उससे विभिन्न देशों के साहित्य के विकास और उसके इतिहास के अध्ययन में सहायता मिलती है। इसका कारण यह है कि ये कथानक-रूढ़ियाँ प्राचीन और परम्परागत लोक-वार्ता या पौराणिक आख्यानों में समान रूप से पाई जाती हैं। विद्वानों का विचार है कि शिष्ट साहित्य में उनका प्रवेश लोक-साहित्य की ओर से हुआ है। इसका यह अर्थ नहीं कि शिष्ट साहित्य की कथाएँ लोक-साहित्य में जाती ही नहीं हैं; जाती हैं, पर बहुत कम; और जो जाती भी हैं उन्हें लोक-साहित्य

इस सीमा तक अपनी कथानक-रूढ़ियाँ और शैली के रंग में रँग लेता है कि फिर उनका मूल रूप पहचानना कठिन हो जाता है। शिष्ट साहित्य में लोक-साहित्य की कथाओं का संस्कार कर लिया जाता है और उसमें कवि या लेखक अपनी वैयक्तिक प्रतिभा और ज्ञान का उपयोग करके उन्हें विशिष्ट रूप प्रदान कर देते हैं; जबकि लोक-कथा के रूप में उनका कोई कर्त्ता-विशेष नहीं होता। किन्तु शिष्ट साहित्य में पहुँचकर कथा का रूप भले ही परिवर्तित हो जाय, कथानक के वे मूल तत्त्व बने रहते हैं। कारण यह है कि जिन स्रोतों से ये तत्त्व लिये जाते हैं, उनकी जड़ें मानव-जीवन में बड़ी गहराई तक गई रहती हैं और उनकी उपेक्षा का परित्याग करना शिष्ट साहित्य के कर्ताओं के लिए सम्भव नहीं है। आदिम मानव-जातियों की जीवनानुभूतियाँ और रीति-रिवाज बहुत काल बाद तक अत्यन्त सभ्य हो जाने के बाद भी सभी जातियों में गृहीत और आदृत रहे हैं और बहुत कुछ आज भी हैं। अलौकिक और अप्राकृत शक्तियों, जैसे देवता, राक्षस, गन्धर्व, भूत-प्रेत आदि में विश्वास और जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र में विश्वास आदि तत्त्व आदिम मानव-समाज से ही रूढ़ि के रूप में अब तक चले आ रहे हैं।

अनेक कथानक-रूढ़ियों का मूल उत्स मानव की शारीरिक और मानसिक गठन के भीतर ही निहित है। दोहद कामना, योग-साधना आदि से सम्बन्धित रूढ़ियाँ ऐसी ही हैं। सम्भावना और कल्पनाजनित कथानक रूढ़ियों के मूल में भी मानव-मन की अज्ञात और अप्राप्त के प्रति तीव्र जिज्ञासा और लालसा ही होती है। उसी उद्दाम कर्तृत्व-शक्ति और अपने को पूर्ण बनाने की सुप्त आकांक्षा ही उपचेतन मन से कथा का रूप धारण करके आदिकाल से समाज में प्रकट होती आई है। मानव ने अपने अस्तित्व की रक्षा तथा जीवन को सुखी और उन्नत बनाने के लिए जितने प्रकार के सामाजिक संघर्ष किये हैं उनके स्मृति-चिह्न भी इन कथानक-रूढ़ियों में यत्र-तत्र बिखरे मिलते हैं। मानवीय सम्बन्धों और मानव का शेष प्रकृति जैसे पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-समुद्र, पर्वत आदि के साथ अद्यावधि स्थापित सम्बन्धों की अभिव्यक्ति भी उनमें दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार कथानक-रूढ़ियों के उत्स के अध्ययन का अर्थ होता है मानव-विकास के इतिहास का अध्ययन। अतः नृतत्त्व-शास्त्र, समाज-शास्त्र, पुराण-विद्या, धर्मशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, ज्योतिष, जीव-विज्ञान आदि सभी शास्त्रों के पूर्ण ज्ञान के बिना कथानक-रूढ़ियों के मूल स्रोतों का सम्यक् ज्ञान सम्भव नहीं है। प्रस्तुत निबन्ध में अधिक गहराई में जाकर इस विषय

की छानबीन करना विषयान्तर-मात्र होगा, अतः यहाँ उन स्रोतों की ओर संकेत-मात्र कर देना पर्याप्त होगा। कथानक-रूढ़ियों की संख्या निर्धारित नहीं की जा सकती, क्योंकि संसार-भर की लोक-प्रचलित कथाओं का संग्रह और तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं किया जा सका है। कौनसी कथानक-रूढ़ि किस देश या मानव-समाज से, किन लोगों के माध्यम से, कब और किस मार्ग से यात्रा करती हुई किसी देश या समाज-विशेष में पहुँची, इसका पता लगाना भी अत्यधिक ज्ञान, अध्यवसाय और परिश्रम की अपेक्षा रखता है और उसके बाद भी निष्कर्ष का कितना अंश अनुमान पर आधारित होगा और कितना प्रमाणों पर, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। किसी समाज-विशेष के निजी अनुभवों पर आधारित कथानक-रूढ़ि किस काल में पहले-पहल विकसित हुई और क्यों अधिक प्रचारित हुई, इस सम्बन्ध में भी ऊपर की बात ही लागू होती है।

कथानक-रूढ़ियों का वर्गीकरण

पिछले अध्याय में जिन कथानक-रूढ़ियों का परिचय दिया जा चुका है, उनमें सभी के उत्स का पता लगाना उपर्युक्त कारणों से संभव नहीं है। इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सभी कथानक-रूढ़ियाँ प्रधानतया दो प्रकार की हैं : (१) लोक-विश्वास पर आधारित और (२) कवि-कल्पित। प्रथम प्रकार की कथानक-रूढ़ियाँ मुख्य रूप से लोक-कथाओं तथा पौराणिक और निजन्धरी कथाओं में होती हैं, यद्यपि वे शिष्ट साहित्य में भी गृहीत हुई हैं। दूसरे प्रकार की रूढ़ियाँ केवल शिष्ट साहित्य अर्थात् कवि या लेखक द्वारा रचित कथाओं में उनकी कल्पना से उद्भूत होती हैं। उनका आधार लोक-विश्वास नहीं होता, पर वे इतनी लोकप्रिय हो जाती हैं कि कवि परम्परा में बार-बार दुहराई जाती हैं। प्रथम प्रकार की उन कथानक-रूढ़ियों को जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकता है, निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

१—सम्भावना अथवा कल्पना पर आधारित।

२—अलौकिक या अप्राकृत (अमानवीय) शक्तियों से सम्बन्धित।

३—अतिमानवीय और अतिरंजनायुक्त मानवीय शक्ति से सम्बन्धित।

४—आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक।

५—संयोग और भाग्य से सम्बन्धित।

६—शरीर-वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित।

७—निषेध और शकुन से सम्बन्धित।

८—सामाजिक संगठन और रीति-रिवाजों से सम्बन्धित।

कवि-कल्पित रूढ़ियाँ यद्यपि लोक-विश्वासों पर आधारित नहीं होतीं, पर उनकी कल्पना की सामग्री बहुत-कुछ वही होती है जो लोक-विश्वासों पर आधारित कथानक-रूढ़ियों की होती है। पर दोनों के भीतर निहित दृष्टिकोण में अन्तर होता है। लोक-विश्वासों पर आधारित कथानक-रूढ़ियाँ यद्यपि अधिकतर असम्भव प्रतीत होने वाली, अवैज्ञानिक और भ्रम पर आधारित होती हैं, पर लोक-जीवन में उनकी प्रतिष्ठा कभी-न-कभी सत्य के रूप में रहती अवश्य है। पर कवि-कल्पित रूढ़ियाँ केवल अलौकिकता और चमत्कार उत्पन्न करने के लिए होती हैं। वे अधिकतर मध्ययुगीन समाज के कवियों की देन हैं, जबकि रोमानी कथाओं की रचना केवल मनोरंजन के लिए होती थी और उनमें जिज्ञासा को जागृत रखने के लिए संयोग या भाग्य के सहारे रोमांचक घटनाओं की कल्पना की जाती थी। वन में मार्ग भूलना और किसी जलाशय के किनारे किसी सुन्दरी स्त्री से भेंट एक ऐसी ही रोमांचक कल्पना है जो परम्परायुक्त होने के कारण रूढ़ि बन गई है।

किसी-किसी कथानक-रूढ़ि के भीतर एकाधिक मूल उत्सों का आभास मिलता है, पर जो सर्वप्रधान हो उसी के आधार पर उस रूढ़ि का वर्गीकरण करना उचित है। उदाहरण के लिए पिपासा और जल लाने जाते समय असुर-दर्शन और प्रिया-वियोग, इस रूढ़ि में अप्राकृत शक्ति और संयोग या भाग्य इन दोनों से प्रभाव ग्रहण किया गया है। दूसरी बात यह है कि कभी कथानक-रूढ़ियाँ कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाने में सहायक होने के कारण कुतूहल को आद्यन्त बनाए रखने के लिए प्रयुक्त होती हैं, इसलिए उनमें अलौकिकता, असाधारणत्व, असम्भाव्यता या अस्वाभाविकता तो अवश्य होती है, पर उन सब में न्यूनाधिक मात्रा में सम्भावना या कल्पना का सहारा अवश्य लिया जाता है। उदाहरणार्थ एक साधारण व्यक्ति यदि तीन-चार विवाह कर सकता है तो इसकी सम्भावना तो है ही कि कोई बड़ा विक्रमी राजा ३६० रानियाँ या कृष्ण की तरह १६०० रानियाँ रख सके। यहाँ इस सम्भावना का आधार उस राजा की शक्ति की कल्पना ही है। इसी तरह यदि कोई राजा समस्त भूमण्डल को जीत सकता है तो उसके स्वर्ग और पाताल तक पहुँच जाने की भी सम्भावना बनी ही है, क्योंकि मानव की शक्ति तो अपरिसीम होती है। फिर भी कुछ कथानक-रूढ़ियाँ सम्भावना या कल्पना पर बहुत अधिक आवृत होती हैं। अतः उन्हीं के सम्बन्ध में पहले विचार किया जा रहा है—

१. सम्भावना या कल्पना पर आधारित रूढ़ियाँ

मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास में सम्भावना और कल्पना का बहुत अधिक हाथ है। प्रारम्भिक मानव ने जब अपने नैसर्गिक परिवेश से निरन्तर संघर्ष करते हुए अपने भीतर सोचने-समझने की शक्ति उत्पन्न की तभी उसने यथार्थ और कठोर वास्तविकता की सीमा को तोड़कर कल्पना-लोक में विहार करना भी सीखा। इस तरह उसकी कल्पना की भूमि भी उसकी वास्तविकता का ही एक अंग थी। उसने जड़ वस्तुओं में चेतना की, पशु-पक्षियों में मानवीय शक्तियों की और प्राकृतिक शक्तियों के भीतर देवत्व की कल्पना की। निश्चय ही उसकी कल्पना का आधार यथार्थ जगत् ही था, पर उसमें भ्रम का योग अधिक था, सत्य का कम। कालान्तर में ज्यों-ज्यों भ्रम का कुहासा ज्ञान के आलोक से फटता गया त्यों-त्यों कल्पना सम्भावनामूलक बनती गई। इस प्रकार जितने पौराणिक विश्वास और निजन्धरी आख्यान विकसित हुए उनमें कल्पना और सम्भावना का ही हाथ अधिक था। आदिम मानव प्रकृति के बीच में उसी के एक अंग के रूप में रहता था, अतः उसका पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, नदी-पर्वतों आदि के साथ घनिष्ठ सम्पर्क था। यही नहीं, वह उनमें, विशेषकर पशु-पक्षियों में, मानवीय गुणों का आरोप भी करता था।[१] फलस्वरूप उसने वृक्षों, पर्वतों और नदियों को देवता माना। पशु-पक्षी मुख से कुछ ध्वनियों का उच्चारण कर लेते हैं, अतः सम्भावना के आधार पर यह कल्पना की गई कि उनकी अपनी भाषा होती है और उसे समझा भी जा सकता है। पशु और मानव के बीच बातचीत का आधार इस प्रकार की आदिम कल्पना ही है। शुक-शारिका आदि ऐसे पक्षी हैं जो मानवीय ध्वनियों का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। सम्भावना के आधार पर इस तथ्य को आगे बढ़ाकर इस बात की कल्पना कर ली गई कि शुक-शुकी, तोता-

---

१, "Most primitive races live very close to nature. They know the characteristics of the animal-world, for their own subsistance depends essentially on animals. They begin to regard the animals not as inferior creatures, but as equals and to judge them according to the same standards as themselves. They see the qualities of their own nature as common also to the animal world."
Primitive Art, p. 56, By Leonard Adam, Penguin books, 1949.

मैना कथाएँ भी सुना सकते हैं। कपोत आदि पक्षी शिक्षा देने पर पत्र आदि पहुँचाया करते हैं, कुत्ते और घोड़े स्वामिभक्त होते हैं, बन्दर मानवीय कार्यों का अनुकरण करता है—इन तथ्यों के आधार पर इस बात की पूरी सम्भावना मान ली गई कि हंस सन्देशवाहक हो सकते हैं जो बातचीत के माध्यम से सन्देश पहुँचा सकें। कृतज्ञतावश आत्म-बलिदान करने वाले पशु भी हो सकते हैं। पशु-पक्षी-सम्बन्धी कथाएँ, जो बच्चों के लिए विशेष रूप से होती हैं और जो शिक्षा और उपदेश से युक्त होती हैं, ऐसी ही होती हैं, जैसे पंचतन्त्र और ईसप की कहानियाँ। लोक-कथाओं में यह बात और भी अधिक देखी जाती है। इसी प्रकार अमृत-फल और पुत्रदायक फल की रूढ़ि भी विशुद्ध कल्पना पर आधारित है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, सभी कथानक रूढ़ियों में कल्पना और सम्भावना का कुछ-न-कुछ योग तो रहता ही है, पर पशु-पक्षी आदि से सम्बन्धित लोकाश्रित कथानक-रूढ़ियाँ प्रधानतया सम्भावना पर ही आधारित होती हैं। कवि-कल्पित शिष्ट साहित्य में भी इस प्रकार की रूढ़ियाँ होती हैं, जिनका आधार मात्र कल्पना या सम्भावना ही होती है। इस प्रकार की कुछ कथानक-रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं :

१—पशु-पक्षियों की बातचीत, २—कहानी कहने वाला शुक, ३—शुक द्वारा अमृत-फल का लाया जाना, ४—सन्देशवाहक हंस या कपोत, ५—कृतज्ञ जन्तु, ६—जीवित या मृत मछली का हँसना, ७—भरुण्ड और गरुड़ द्वारा प्रिय युगलों का स्थानान्तरीकरण, ८—विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व, ९—बन में मार्ग भूलना और सरोवर पर सुन्दरी का मिलना, १०—आखेट के समय प्यास लगने पर जल की खोज में जाना और मार्ग में असुर से भेंट और प्रिया-वियोग, ११—उजाड़ नगर का मिलना और नायक का वहाँ का राजा हो जाना, आदि।

२. *अलौकिक और अप्राकृत (अमानव) शक्तियों से सम्बन्धित रूढ़ियाँ*

देवी-देवता : ऊपर आदिम मानव की कल्पना-शक्ति के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जा चुका है। मनुष्य की सबसे बलवती प्रवृत्ति आत्म-संरक्षण की प्रवृत्ति है जिसके कारण ही वह नाना प्रकार के भौतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रयत्न करता चला आ रहा है। ईश्वर, देवता और भूत-प्रेत की कल्पना भी उसकी इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप है। मूर्त रूप में सशरीरी देवी-देवताओं की कल्पना तो बाद की कल्पना है; प्रारम्भ

में आदिम मानव प्राकृतिक शक्तियों या अपने से बलवती शक्तियों में विश्वास करता था और इस तरह सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आँधी और वर्षा, पर्वत, नदी आदि को देवता मानकर उनकी पूजा करता था। यह प्रवृत्ति किसी-न-किसी रूप में विभिन्न धर्मों में अब तक पाई जाती है। उनकी कल्पना मानव ने आत्म-संरक्षण की दृष्टि से ही की थी। बहुत बाद में चलकर वैयक्तिक सशरीरी देवताओं की कल्पना की गई और उनकी मूर्तियाँ बनीं।[१] वेदों में उन्हीं अदृश्य अशरीरी देवताओं की कल्पना मिलती है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, गणेश आदि सशरीरी देवताओं की कल्पना का विकास भारतीय संस्कृति के इतिहास के बाद की मंजिलों में हुआ। साथ ही लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, पार्वती आदि देवियों की भी देवताओं की पत्नियों के रूप में कल्पना की गई। इसी प्रकार स्वर्ग या इन्द्रलोक की भी कल्पना की गई जहाँ सभी देवता रहते हैं। इन देवी-देवताओं की उत्पत्ति, अलौकिक और चमत्कारी शक्ति, कार्य आदि तथा मानव के साथ उनके सम्बन्धों को लेकर नाना प्रकार की पौराणिक और निजन्धरी कथाओं का विकास हुआ। ये देवता मानव के भाग्य-निर्माता, उसकी सहायता करने वाले या कष्ट देने वाले माने जाते रहे हैं। संसार-भर के, विशेषकर आर्य जातियों के, साहित्य—यूनानी, लैटिन, भारतीय, ट्यूटानिक—आदि में इसके प्रमाण भरे पड़े हैं।

भूत-प्रेत : देवी-देवताओं में विश्वास के समान ही भूत-प्रेत में विश्वास भी आदिम मानव-समाज की ही वस्तु है। संसार के सभी पुराने धर्मों में यह विश्वास दिखाई पड़ता है कि मानव का व्यक्तित्व शरीर के त हो जाने के बाद भी किसी-न-किसी रूप में बना रहता है। इसी के परिणामस्वरूप आत्मा के आवागमन अथवा भूत-प्रेत में विश्वास करने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। अनेक देशों, जैसे मिस्र, बेबीलोन आदि, में मरने के बाद मृत शरीर के साथ

---

१. "Before men believed in individual Gods, they believed in natural forces or superior-beings, which they thought of as manifest in sun, moon, fire, storm or rain. It was only later that they attempted to portray them in images. The oldest Aryan Indians, whose religion is to be traced in the Veda, worshipped invisible Gods. Individual deities did not appear until a later date,

Primitive Art, P. 50, By Leonard Adam, Penguin books, 1949.

जीवन की आवश्यक सामग्री रख दी जाती थी ताकि उसकी आत्मा वहीं पड़ी रहे और उसे कष्ट न हो। कुछ अन्य देशों और जातियों में मरने के बाद उस व्यक्ति के भविष्य की उतनी चिन्ता नहीं की जाती थी जितनी इस बात की कि उस व्यक्ति की आत्मा प्रेत बनकर फिर लौटकर न आवे, क्योंकि वह आकर अपने सम्बन्धियों को कष्ट देगी। अनेक आदिम जातियों में प्रेत को अपने से दूर भगाने की ही चिन्ता अधिक की जाती थी। उनके बारे में लोगों की कल्पना यह थी कि भूत-प्रेत अशरीरी, या छायातन, या इच्छानुसार रूप-परिवर्तन करने वाले और अपरिमित शक्ति से युक्त होते हैं। इस प्रकार यहाँ भी आत्म-संरक्षण की भावना ही काम कर रही थी और इसीलिए मृतक-संस्कार आदि कर्मकाण्डों द्वारा तथा पितृ-पूजा, पिण्डदान आदि के विधान द्वारा मृतात्माओं को सन्तुष्ट किया जाता है ताकि वे फिर लौटकर अपने सम्बन्धियों को कष्ट न देने लगें।[१] अनेक आदिम जातियों में पूर्वजों की मृतात्माओं यानी उनके भूत-प्रेत को ही देवता माना जाता है और वे समाज के सुख-समृद्धि के प्रदाता माने जाते हैं। हिन्दुओं में प्रेत को भी एक योनि माना जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि जो व्यक्ति अपनी पूरी आयु भोगने के पूर्व किसी दुर्घटना में मरता है, और जिसकी इच्छा-वासना पूरी नहीं हुई रहती वही प्रेत-योनि प्राप्त करता है; प्रेत बनकर वह अपने शत्रुओं को अथवा अपनी इच्छा पूरी न करने वालों को कष्ट देता है। किन्तु हिन्दू धर्म में आत्मा के आवागमन और योनि-परिवर्तन के विश्वास के कारण

१. "In other and in most of the other historical religions, however, the question, what are the fortunes of a person after his body is dead, was felt to be much less practical and much less interesting to the survivors than the question, how to deal with the ghost that was apt to revisit and disturb the survivors. The practical question was how to induce the ghost to go away and to stay away; and funeral rites and ceremonies are generally, and may well originally have always been, designed and maintained simply to keep the ghost away. The dead are the departed. They have gone away."

Comparative Religion, P. 64, By F.B. Jevons, Cambridge, 1913,

भूत-प्रेत की मान्यता सार्वजनीन नहीं है, और न यहाँ आत्मा के प्रेत-योनि में जाने की अधिक सम्भावना ही रहती है। इस प्रकार सभी देशों और जातियों में आदिम युग से भूत-प्रेत में किसी-न-किसी मात्रा में विश्वास किया जाता रहा है और लोक-कथाओं तथा शिष्ट साहित्य में यह विश्वास अभिव्यक्ति पाता रहा है।

राक्षस, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि : सभी देशों और जातियों में देवताओं और भूत-प्रेतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे अप्राकृतिक या अमानव प्राणियों में विश्वास किया जाता रहा है जो मानव-आकृति के होते हुए भी विशालता और शक्ति में मानव से बहुत आगे होते हैं, जिनके अवयव भयंकर या विकृत होते हैं और जो देवताओं के समान असम्भव और असाधारण कार्य करने वाले होते हैं। राक्षस की कल्पना किसी-न-किसी रूप में अनेक देशों में मिलती है। नरभक्षी जातियों और कबीलों के कारण, जन्तुओं द्वारा मानव की अदृश्य हत्या के कारण, इस कल्पना का जन्म हुआ होगा। बाद में एक जाति अपनी शत्रु-जाति को राक्षस के नाम से सम्बोधित करने लगी और इस प्रकार राक्षस नामक प्राणी की धारणा बद्धमूल हो गई। प्राचीन भारतीय साहित्य में देवासुर संग्राम में असुर की शक्ति देवताओं से भी अधिक बताई गई है। असुर एक जाति ही थी जो सम्भवतः आर्य जाति की ही एक शाखा थी। नृतत्त्व शास्त्रीय विद्वानों का कहना है कि राक्षस भी द्रविड़ जाति की एक शाखा थी जिससे आर्यों को भारतीय भूमि में प्रवेश करने पर भयंकर संघर्ष करना पड़ा था। असुर, राक्षस आदि जातियों ने अन्त तक आर्यों की वश्यता और उनकी संस्कृति को स्वीकार नहीं किया। कुछ ऐसी जातियाँ भी थीं जिन्होंने आर्यों के साथ प्रारम्भ में संघर्ष तो किया पर शीघ्र ही या क्रमशः उनकी वश्यता स्वीकार कर ली और धीरे-धीरे आर्य-जाति ने उन्हें अपने भीतर हजम कर लिया। ये जातियाँ अपने रीति-रिवाजों और विश्वासों को भी साथ लेती आईं और उनके देवी-देवता आर्यों के देवताओं के समकक्ष या अनुचर के रूप में स्वीकार कर लिये गए। यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरस, विद्याधर, नाग आदि ऐसी हिमालय प्रदेश की जातियाँ थीं जो कला-कौशल, नृत्य-संगीत, शृंगार-विलास, तंत्र, रसायन आदि में आर्यों से बहुत आगे बढ़ी हुई थीं। यक्ष प्रजापति कुबेर आदि उनके पूर्व पुरुष या देवता, आर्यों के अधम या मध्यम कोटि के देवता बन गए।[1] किन्नर जाति की स्त्रियाँ सुन्दरी होती थीं, अतः वे देवताओं के दरबार की गणिकाएँ मान ली गईं। गन्धर्व राज्य और नाग राज्य की

---

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'अशोक के फूल'।

भी कथाएँ मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि इन जातियों के अलग राज्य थे जिन्हें आर्य जाति ने अन्तर्भुक्त कर लिया। इन जातियों को हिन्दू जाति की विविध शाखाओं और सम्प्रदायों ने दिव्य मान लिया और उनके सम्बन्ध में यह लोक-विश्वास प्रचलित हो गया कि यक्ष, गन्धर्व आदि आकाश में उड़ते हैं, उनके पास देवताओं की तरह विमान होते हैं, वे जैसा और जब चाहें अपना रूप बदल सकते हैं और जहाँ चाहें विचरण कर सकते हैं। वे शारीरिक शक्ति में भी देवताओं के समान होते हैं और उन्हीं की तरह रह भी सकते हैं। अप्सराओं और परियों की कल्पना सभी देशों में प्रायः मिलती है। कहीं वे जल-कन्या के रूप में, कहीं आकाश में उड़ने वाली और कहीं नाग-कन्या के रूप में मानी गई हैं। उनके बारे में विश्वास किया जाता था कि वे जब चाहें अदृश्य हो सकती हैं, अपना रूप बदल सकती हैं, किसी को उड़ा ले जा सकती हैं और मानव के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर सकती हैं। भारत में उनके मानवी रूप में संतान उत्पन्न करने की कथाएँ प्रचलित हैं।

उपर्युक्त अलौकिक और अमानव शक्तियों से सम्बन्धित लोक-विश्वासों ने संसार के प्राचीन साहित्य और अद्यावधि लोक-साहित्य को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पुराण-कथाओं (मिथ) और निजन्धरी आख्यानों की तो सृष्टि ही इन्हीं विश्वासों के आधार पर हुई है। इन्हीं विश्वासों पर आधारित कथाओं ने इतने दूर-दूर के भूभागों में यात्रा की है कि विभिन्न देशों तथा जातियों की पौराणिक और निजन्धरी कथाओं में उनका मिलता-जुलता रूप काफी मात्रा में मिलता है। ये शक्तियाँ मानव-कल्पित हैं, अतः इन्हें मानव ने अपने ही वास्तविक जगत् के परिपार्श्व में रखकर निर्मित किया है। इस तरह ये शक्तियाँ कहीं तो मानव का भाग्य बनाने या बिगाड़ने का कारण होती हैं और कहीं उसके कठिन कार्यों में सहायता या बाधा पहुँचाती हैं; कहीं उनका पूज्य-पूजक का सम्बन्ध दिखाई देता है तो कहीं मित्रता अथवा शत्रुता और विरोध का। इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर संघटित कथानक के जो तत्व अत्यधिक प्रयुक्त और बहुकाल-व्यापी हुए उन्हें अप्राकृतिक शक्तियों से सम्बन्धित कथानक-रूढ़ियाँ कह सकते हैं। इनका प्रधान क्षेत्र लोक-साहित्य या लोक-कथाएँ हैं, क्योंकि लोक-विश्वासों का सीधा प्रतिफलन लोक-साहित्य में ही होता है। इस प्रकार की कल्पित कथानक रूढ़ियाँ नहीं के बराबर हैं जिनमें किसी ऐसी अप्राकृतिक शक्ति की कल्पना हो जो लोक-विश्वास में न पाई जाय। इन रूढ़ियों को शिष्ट साहित्य में भी बहुत अपनाया गया है, पर उनका माध्यम लोक-कथाएँ और पौराणिक या निजन्धरी कथाएँ ही हैं। इसका

प्रमाण संस्कृत का समूचा कथा-आख्यायिका-साहित्य और जैन तथा बौद्धों का साहित्य है। पुराणों और धार्मिक कथाओं में भी ये बहुत मिलती हैं और उस स्रोत से भी शिष्ट साहित्य ने इन्हें अवश्य अपनाया है, पर वस्तुतः इनका मूल स्रोत लोक-विश्वास और लोक-साहित्य ही है। इस वर्ग की कुछ विशेष कथानक रूढ़ियाँ ये हैं—

(१) देवता, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व आदि अलौकिक व्यक्तियों द्वारा कठिन कार्यों के सम्पादन में सहायता। (२) उजाड़ नगर में गन्धर्व, यक्ष या राक्षस का निवास। (३) आकाशवाणी। (४) हंस के रूप में अप्सरा का होना और मानव से प्रेम हो जाना। (५) देवी-देवता से धन प्राप्त होना। (६) राक्षस, नाग (ड्रैगन), गन्धर्व आदि से युद्ध। (७) अप्सरा का नायिका के रूप में अवतार। (८) प्रेम-व्यापार में परियों तथा देवों की सहायता। (९) जीवित हो उठने वाली मूर्ति या गुड़िया।

३. अति मानवीय शक्ति और कार्यों से सम्बन्धित रूढ़ियाँ

इस वर्ग में असामान्य व्यक्तियों द्वारा किये गए ऐसे कार्य और घटनाएँ आती हैं जो असाधारण, आश्चर्यजनक, भयंकर या अत्यधिक शक्ति का प्रदर्शन करने वाली होती हैं। मुनि, योगी, अतिशय वीर, तान्त्रिक और जादूगर, डाइन, वरदान-प्राप्त मनुष्य आदि असाधारण शक्ति वाले व्यक्ति ऐसे कार्यों के कर्ता होते हैं। तपस्या, योग और तन्त्र-साधना, शक्ति-साधना तथा गुह्य विद्याओं, जैसे जादू-टोना आदि से इन कथानक रूढ़ियों की उत्पत्ति हुई है, अतः इनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

भारतवर्ष में इन साधनाओं और विद्याओं की बहुत प्राचीन परम्परा है। वैदिक काल से ही इनके अस्तित्व का पता चलता है। ऋषि द्रष्टा और असाधारण ज्ञान दृष्टि वाले व्यक्ति होते थे और मुनि तपस्या और साधना द्वारा ज्ञान का लाभ करते थे। परवर्ती युगों में उनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की अनुश्रुतियाँ प्रचलित हो गईं। ऋषि-मुनि देवताओं के समकक्ष या प्रतिद्वन्द्वी माने जाने लगे और यह समझा जाने लगा कि देवता, विशेषकर इन्द्र, उनकी तपस्या से भयभीत हो उठते हैं कि कहीं उनके द्वारा उनका सिंहासन छिन न जाय। इन ऋषियों-मुनियों में असाधारण शक्ति की कल्पना की गई। इसी कल्पना के परिणामस्वरूप यह विश्वास किया जाता था कि वे हजारों वर्ष तक जीवित रहते थे, वरदान या शाप देने की शक्ति रखते थे, उनकी वाणी विफल नहीं जाती थी और वे दूसरों के मन की बात या दूरवर्ती स्थानों

में होने वाली घटनाओं को दिव्य-दृष्टि से जान लेते थे। इस प्रकार सम्भावना के आधार पर ऋषि-मुनियों को अलौकिक शक्ति के रूप में लोक में स्वीकार कर लिया गया और उनके सम्बन्ध में नाना प्रकार की कल्पित निजन्धरी कथाएँ प्रचलित होती रहीं। उन्हीं कथाओं ने पौराणिक और महाकाव्य की अनेक कथाओं में स्थान पाया। ऋषि-मुनियों की तरह जातीय वीरों और सांस्कृतिक पुरुषों (कल्चर हीरोज़) की कथाएँ भी प्रचलित हुई। ऋषि-मुनियों की तरह ये वीर भी मात्र काल्पनिक नहीं ऐतिहासिक पुरुष रहे होंगे, पर उनका नाम भी सम्भावना के आधार पर अतिशयोक्तिपूर्ण कार्यों और घटनाओं से सम्बद्ध करके उन्हें देवता या अवतार के पद तक पहुँचा दिया गया। पौराणिक और निजन्धरी कथाओं में ऐसे वीरों का बार-बार वर्णन आता है। कभी तो वीर देवताओं की सहायता करते हैं तो कभी देवता उनकी सहायता करते पाये जाते हैं। अन्य देशों में भी, विशेषकर यूनान में, ऐसे सांस्कृतिक वीरों की कल्पना खूब की गई है।

योगी और तान्त्रिक का महत्त्व परवर्ती काल में बढ़ा, यद्यपि वैदिक काल में तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना के होने का पता अथर्ववेद से ही चलने लगता है। उत्तर वैदिक काल में विभिन्न जातियों और संस्कृतियों के आचार-विचार के संगम के फलस्वरूप आर्य लोक-धर्म प्राचीन वैदिक ब्राह्मण धर्म से दूर हटने लगा। तन्त्र-मन्त्र, गुह्य साधना और योग-विद्या उसी काल में आर्य जाति द्वारा गृहीत हुई होंगी। यों तो वैदिक रचनाओं को भी मन्त्र कहा जाता है, पर परवर्ती काल में यह माना जाने लगा कि मन्त्र दीक्षा के लिए होते हैं। सगुणोपासना की पद्धति स्वीकृत होने पर मन्त्र का महत्त्व बहुत बढ़ गया। अतः श्रुति स्मृति पुराणादि में सभी प्रकार के मन्त्र दिये गए हैं। आगमों का प्रचार होने पर वैदिक मन्त्रों की प्रतिष्ठा कम हो गई और तान्त्रिक और पौराणिक मन्त्र सिद्धिप्रद माने गए। यहाँ तक कहा गया कि कलियुग में जो आगम-मार्ग का उल्लंघन करके वैदिक मन्त्रों का आश्रय लेता है उसकी मुक्ति नहीं होती, क्योंकि कलियुग में वैदिक मन्त्र विषहीन सर्प की तरह निर्वीर्य हो गए हैं। अतः आगमों में बताये गए मन्त्र-विधि से ही देवताओं का भजन करना चाहिए, क्योंकि मन्त्र ही जप यज्ञादि सभी क्रियाओं का शासन करने वाले हैं।[1] इन मन्त्रों की दीक्षा उपयुक्त गुरु से ही लेने का

---

१. विना ह्यागम मार्गेण कलौ नास्ति गतिः प्रिये।
श्रुति स्मृति पुराणादौ मयैवोक्तं पुरा शिवे॥
आगमोक्तेन विधिना कलौ देवान् यजेत् सुधीः।

विधान है। तन्त्र-शास्त्र में मन्त्र, देवता और गुरू इन तीनों में कोई भेद नहीं माना गया है और तन्त्रोक्त मन्त्र लेने का सबको अधिकार है। गुरु-मन्त्र का परित्याग करने वाले को रौरव नरक मिलता है। तन्त्र-शास्त्र में मन्त्रसिद्ध यन्त्रों का भी विधान दिया गया है। तन्त्रों के अनुसार यन्त्रों में देवता का अधिष्ठान रहता है, इसलिए मन्त्र अंकित कर यन्त्र द्वारा देवता की पूजा की जाती है। ये यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—(१) पूजा यन्त्र, (२) धारण यन्त्र, जिनके धारण करने से विघ्न-बाधा दूर होती है और इच्छित फल की प्राप्ति होती है। मन्त्र, जप और बलिदान के बाद उन्हें धारण किया जाता है। मारण और नाशक यन्त्र भी होते हैं। 'तन्त्र-प्रदीप' के अनुसार ऐसे यन्त्रों को काष्ठ पर या भीत पर स्थापित कर देने से शत्रु के धन-धान्य, पुत्र-पौत्र और आयु का नाश होता है।[1] तन्त्र-साधना बड़ी कठिन मानी गई है और मन्त्र-सिद्धि के नाना उपाय बताये गए हैं। तन्त्र-ग्रन्थों में सिद्धि के ये लक्षण बताये गए हैं—(१) मनोरथ-सिद्धि, (२) मृत्युहरण, (३) देवता-दर्शन, (४) दूसरे के मन की बात जान लेना, (५) अदृष्टवशतः पर पुर में प्रवेश, (६) शून्य मार्ग में विचरण, (७) सर्वत्र भ्रमण की शक्ति, (८) खेचरी देवताओं के साथ मिलकर उनकी बातें सुनना, (९) भूछिद्र दर्शन, (१०) पार्थिव तत्त्व-ज्ञान, (११) द्रव्य-

कलावागममुल्लंघ्य योऽन्य मार्गे प्रवर्तते ॥
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं-सत्यं न संशयः।
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्रा सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः ॥
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जय यज्ञ क्रियादिषु।
निर्वीर्याः श्रौतजातीयाः विषहीनोरगा इव ॥
सत्यादौ सफला आसन कलौ ते मृतका इव
पांचालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रिय समन्विताः ॥
अमूरशक्ता कार्येषु वन्ध्या स्त्री संगमो यथा
न तत्र फल सिद्धिः स्यात श्रम एव हि केवलं ॥
कलावन्योदितै मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृतीषा जाह्नवी तीरे कूपं खनति दुर्मति ॥

—'हरतत्वदीधितधृत महानिर्वाण तन्त्र'

१. ततो जपेत् सहस्रन्तु सकलेप्सित सिद्धये।
बलिदानं ततः कृत्वा प्रणमेच्चक्रराजकम्।
फलौ भित्तो तथा पट्टे स्थापयेद्यन्त्रमीश्वरि।
धन धान्य पुत्र पौत्र आयुश्च तस्य नश्यति। —'तंत्र सार'

कीर्ति आदि का लाभ, (१२) दीर्घ जीवन, (१३) राजादि को वश में करना, (१४) सर्वत्र चमत्कारजनक कार्य दिखलाना, (१५) सिद्ध पुरुष के दर्शन से रोवा विष आदि का नाश, (१६) सर्ववशीकरण क्षमता, (१७) अष्टांग योग का अभ्यास, (१८) मारण, उच्चाटन, वशीकरण, शान्ति आदि की शक्ति।[1]

परवर्ती काल में विशेषकर बौद्ध काल के बाद मध्य युग में भारत में व्यापक रूप में तान्त्रिक सिद्धों और आगमवादियों का प्रभाव था जो गुह्य साधना और चमत्कारजनक कार्यों से सामान्य जनता को प्रभावित और आतंकित करते रहते थे। इसी काल में तन्त्र-मन्त्र जाननेवाले सिद्धों और साधकों (साधुओं) के सम्बन्ध में विविध प्रकार की कथाएँ फैलीं जो लोक-साहित्य में तथा कविकल्पित साहित्य में गृहीत हुईं। उनमें ऊपर बताये गए अति मानवीय कार्यों की एक ही प्रकार की घटनाएँ और कार्य इतने अधिक प्रयुक्त होते रहे कि वे कथानक-सम्बन्धी रूढ़ि बन गए।

तन्त्र-मन्त्र का योग से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। तन्त्रों में कहा गया है कि बिना मन्त्र के योग द्वारा और बिना योग के मन्त्र द्वारा कुछ फल नहीं होता। यह योग तीन प्रकार का माना गया है। राजयोग, मन्त्रयोग और हठयोग। किन्तु योग से अधिकतर हठयोग का ही अर्थ लिया जाता है, क्योंकि तान्त्रिकों और सिद्धों ने इसी का प्रचार किया और साधारण जनता योगियों के चमत्कारपूर्ण कार्यों से ही प्रभावित होती थी। योग के आदि आचार्य पातंजलि माने जाते हैं जिन्होंने योगशास्त्र की रचना की। योग-पद्धति अधिक मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक है, पर उसका रूप आगे चलकर बहुत विकृत हो गया। योग अभ्यास और वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध की शिक्षा देता है (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः—पातंजलि)। योगांग[2] के अनुष्ठान से अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच प्रकार के मिथ्या-ज्ञान का क्षय होता है, अशुद्धि मिटती है तथा ज्ञान की दीप्ति बढ़ती है और विवेक उत्पन्न होता है। योगी चार प्रकार के होते हैं—(१) प्रथम कल्पिक, (२) मधुभूमिक, (३) प्रज्ञा ज्योति, (४) अतिक्रांत भावनीय। अन्तिम प्रकार का योगी सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर चुका होता है, वह असम्प्रज्ञात समाधि में लीन हो सकता है और वह मृत्युञ्जयी हो जाता है। इस प्रकार योग-मार्ग में भी अमर होने, आकाश में उड़ने, दूसरों के मन की बात जान लेने आदि चमत्कारपूर्ण और अलौकिक कार्यों की

१. हिन्दी विश्व कोष—देखिए 'मन्त्र'।

२. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि। —'योग सूक्त'—२—२६।

बात कही गई है। परवर्ती बौद्धों-जैनों और हिन्दुओं ने समान रूप से इस मार्ग को अपनाया था, यहाँ तक कि भारत में आने पर सूफ़ी फ़क़ीरों ने भी इस विश्वास को ग्रहण कर लिया। परिणामस्वरूप योग के चमत्कार और योगियों की शक्ति में सामान्य जनता का विश्वास जम गया और उनसे सम्बन्धित नाना प्रकार की लोक-कथाएँ प्रचलित हो गईं। सूफ़ी प्रेमाख्यानक कवियों ने योग-सम्बन्धी कथानक-रूढ़ियों को खूब अपनाया, क्योंकि वे लोक-विश्वास का आदर करते थे।

जादू टोना : अलौकिक और अमानवीय कृत्य जैसे इन्द्रजाल, तिलिस्म आदि, जादू तथा डाइनों द्वारा दूसरों पर रोगादि को प्रेरित करना, टोना कहलाता है। जादू-टोना भी मन्त्र-तन्त्र कोटि की ही गुह्य विद्याएँ हैं। प्राचीन काल में संसार की सभी जातियाँ जादू-टोने पर विश्वास करती थीं। विकसित धर्मों का प्रसार होने पर उनका ज़ोर कम हुआ, पर लोक-विश्वास में उनका स्थान बना रहा। आदिम जातियों में जादू-टोना धर्म का प्रमुख अंग ही था और रोगों की चिकित्सा तथा अन्य कामनाओं की सिद्धि, यहाँ तक कि प्राकृतिक कार्यों, वर्षा, फसल आदि के लिए भी जादू-टोने का प्रयोग होता था। सभ्य जातियों में जादू-टोना जानने वाले नीची निगाह से देखे जाते थे और इंगलैंड आदि अनेक देशों में इनका जानना कानून की दृष्टि से जुर्म माना जाता था, क्योंकि ये लोग समाज के शत्रु कहे जाते थे।[1] अनेक देशों में जादू-टोने और मन्त्र-तन्त्र का प्रयोग दुष्ट देवताओं, राक्षसों और भूत-प्रेत को भगाने के लिए भी होता था और ऐसा जादू-टोना सामाजिक हित के लिए माना जाता था। इसी कारण सम्भवतः आदिम मानव के धर्म का स्वरूप जादू-टोना और मन्त्र-

---

१. "It is liable to be employed for purposes in aid of which the assistance of the community's Gods cannot be prayed, for the very good reason that those purposes were anti-social and are felt by the community to be injurious to it. When magic is employed as it commonly was employed to bring about the sickness or death of any member of the community, it is naturally visited by the community with condemnation and witch-finders may be set to work to smell out the magician with a view to his execution."
Comparative Religion—P. 52, by F. B. Jevons. Cambridge, 1913.

तन्त्र का ही था।[1] नृतत्व शास्त्रीय विद्वानों का तो मत है कि जादू-टोना, मन्त्र-तन्त्र का धर्म से सम्बन्ध ही नहीं है बल्कि उनमें विश्वास स्वयं एक प्रकार का धर्म है। भारत में तान्त्रिक मतावलम्बी एक धार्मिक संप्रदाय के रूप में माने जाते रहे हैं। सामान्य जनता धर्म पर आस्था रखने वाली होती है, अतः जादू-टोना में उसका दृढ़ विश्वास होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि उसके इस प्रकार के विश्वासों की अभिव्यक्ति उसके लोक-साहित्य और उसी के माध्यम से शिष्ट साहित्य में भी बहुत अधिक हुई है। लोक-कथाओं में जादू-टोना जानने वालों के चमत्कारपूर्ण कार्यों का इतना अधिक वर्णन हुआ है और शिष्ट साहित्य में भी उन्हें इस सीमा तक अपनाया गया है कि ऐसी बातें कथानक-सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन गई हैं।

ऊपर अतिमानवीय शक्तियों और कार्यों से सम्बन्धित कथानक-रूढ़ियों के मूल उत्स के सम्बन्ध में जो विचार किया गया है, उससे स्पष्ट है कि सभी देशों के लोक-जीवन में ऋषि-मुनियों, साधु-फकीरों, तान्त्रिकों-जादूगरों और असाधारण कार्य करने वाले सांस्कृतिक वीरों के प्रति प्रतिष्ठा या भय की भावना रही है, अर्थात् जनता का उन विद्याओं और कार्यों में विश्वास रहा है जो किसी-न-किसी सीमा तक आज भी है। इस विश्वास के मूल में भी आत्म-संरक्षण की भावना ही काम करती रही है। परिणामस्वरूप इस विश्वास को मानव ने अपने दैनन्दिन जीवन के कार्य-कलाप में ही नहीं, अपने लिखित-अलिखित साहित्य में भी व्यक्त किया। लोक-कथा, लोक-गीत, पुराण-आख्यान, महाकाव्य-नाटक, कथाआख्यायिका सबमें उक्त विश्वास से सम्बन्धित कथाओं का वर्णन हुआ है जिसके फलस्वरूप कुछ चिराचरित और एक ही प्रकार से प्रयुक्त बातों की रूढ़ियाँ बन गई हैं। वे अधिकतर लोका-

१. "In the primitive sphere, we must first of all become used to the idea of religion in a far wider sense than is understood by the monothiest creed of our own world. Perhaps the earliest form of religion is magic which is based on the belief in suspernatural forces intervening in the lives of men and wholly or partially determining their fate. But there are other supernatural forces controlled by Gods and demons which can be evoked or resisted through ritual-prayer, miming, or sacrifice." Primitive Art—P. 50, By—Leonhard Adam, Penguin Books, 1949.

श्रित ही हैं। और ऐसी जो रूढ़ियाँ शिष्ट साहित्य में मिलती हैं उनका स्रोत भी लोक-विश्वास और लोक-कथाओं में प्रयुक्त रूढ़ियाँ ही हैं। ऐसी कुछ रूढ़ियाँ ये हैं—

(१) मुनि-शाप।
(२) नायक द्वारा असम्भव कार्यों का सम्पादन।
(३) परकाय प्रवेश।
(४) मन्त्र-सूत्र।
(५) अभिमन्त्रित वस्तुओं द्वारा मार्गविरोध।
(६) मन्त्रायुध, जादू का अश्व तथा अन्य जादू की वस्तुएँ।
(७) रूप-परिवर्तन और पति का रूप धारण करके उसकी पत्नी के पास जाना।
(८) राजाओं को मन्त्र से मारना।
(९) पत्थर का जीवित हो उठना।
(१०) मृतक को जीवित कर देना।
(११) जादू से किसी का रूप बदलकर पत्थर, पशु, पक्षी आदि बना देना।
(१२) जादू से बाढ़, वर्षा आदि का दुष्काण्ड उपस्थित करना।
(१३) मुनि या साधुओं द्वारा कठिन रोगों को चमत्कारपूर्ण ढंग से दूर कर देना।
(१४) जादू की लड़ाई—रूप बदलने वाले जादूगरों की लड़ाई।

४. *आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ*

अध्यात्म-विद्या का सम्बन्ध आत्मा और परमात्मा से है और मनोविज्ञान का मन की विविध क्रियाओं से। इस दृष्टि से मानव के समस्त क्रिया-कलाप आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के भीतर आ जाते हैं। उदाहरण के लिए तपस्या, योग और तन्त्र-मन्त्र या जादू-टोना भी, जिनके बारे में ऊपर विचार किया जा चुका है, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक प्रयत्न ही हैं, पर उन कथानक-रूढ़ियों को यहाँ साथ रखकर विचार किया जायगा जिनका सीधा सम्बन्ध अध्यात्म-विद्या और मनोविज्ञान से है। उदाहरण के लिए आत्मा और उसके आवागमन या जन्मान्तर में विश्वास को लिया जाय। धर्म-दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्र में बहुत काल से ही मानव इस विश्वास को अपनाता और विचार करता आ रहा है। भारतीय संस्कृति का तो मूलाधार

ही आत्मा का अस्तित्व, और जन्मान्तर और कर्म-फल की अनिवार्यता में विश्वास रहा है। इस विश्वास का मनोवैज्ञानिक आधार भी मानव की आत्म-संरक्षण की बलवती प्रवृत्ति है जिसकी अभिव्यक्ति उसके विविध धार्मिक और लौकिक (सेकुलर) प्रयत्नों के रूप में होती आई है। उसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप मानव भौतिक सीमाओं को लाँघकर असीम और अनन्त ईश्वर की कल्पना करता है और आन्तरिक तथा धार्मिक कर्मों के द्वारा कर्म के बन्धनों से मुक्त होकर असीम बन जाना चाहता है। भारत के सभी धर्मों—हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि—ने आत्मा के कर्म के बन्धन में बँधकर नाना योनियों में भटकने की बात स्वीकार की है और तदनुसार अपनी धार्मिक और पौराणिक कथाओं का निर्माण किया है। अतः जन्मान्तर-सम्बन्धी कुछ अभिप्राय या रूढ़ियाँ बन गई हैं जो पौराणिक और लोक-प्रचलित कथाओं में बराबर प्रयुक्त होती आई हैं।

उसी तरह कुछ रूढ़ियाँ आचारिक और नैतिक विश्वासों और नियमों से ग्रहण की गई हैं। उपदेशात्मक और नीति-सम्बन्धी कथाओं में इस प्रकार के अभिप्राय बहुत प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए 'सत्य-क्रिया' ऐसा ही अभिप्राय है जिसमें सत्यकथन के द्वारा किसी भी उद्देश्य की सिद्धि में विश्वास किया जाता है। 'देवदूत केश' में वैराग्य की भावना का उपदेश निहित है।

मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है, पर जिन कथानक-रूढ़ियों में बुद्धि का चमत्कार या उपचेतन मन का क्रिया-कलाप प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है उन्हें इस वर्ग में रखा जा रहा है। ब्लूमफील्ड और फादर एलविन वेरियर ने ऐसी कथानक-रूढ़ियों को मनोवैज्ञानिक अभिप्राय (साइकिक मोटिफ्) कहा भी है।[1] स्वप्न-सम्बन्धी कथानक-रूढ़ियाँ प्रत्यक्षतः मनोवैज्ञानिक हैं क्योंकि स्वप्न के फल के सम्बन्ध में संसार-भर की जातियों में विश्वास किया जाता रहा है।[2] भारतवर्ष में लोक और शास्त्र दोनों में स्वप्न में देखी गई बातों का

१. देखिए Myths of Middle India Motif Index, Life and Stories of Jain Saviour Parsvanath.

२. अपने इतिहास और पुराण के आदिम काल से मनुष्य स्वप्न देखता और उनके बारे में कहता आ रहा है। उसी काल से स्वप्नों का तात्पर्य बताने वाले भी विद्यमान रहे हैं। स्वप्न सदा से मनुष्य की गहरी अभिरुचि का विषय रहा है। समस्त मानव-जाति के आदिम साहित्य में इसकी चर्चा मिलती है। स्वप्नों ने सदा से मनुष्य की जिज्ञासा और आश्चर्य को उत्तेजित किया है।

फल विचारा जाता रहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में सर्वप्रथम इस विषय पर विचार हुआ है।[1] अब यह बात पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी मान ली गई है कि स्वप्न वस्तुतः अतीन्द्रिय और अनावश्यक नहीं होता, उससे अतृप्त वासनाओं की पूर्ति होती है या अभीप्सित वस्तु का संकेत मिलता है। फ्रायड और उसके बाद के मनोविश्लेषण-शास्त्रियों ने इस दिशा में बहुत अधिक कार्य किया है और स्वप्न की बातों को जानकर उनके आधार पर रेचन पद्धति द्वारा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा का भी प्रारम्भ किया है। प्राचीन काल में भारत में स्वप्न-फल पर कितना विश्वास था इसका पता चरक, बराह मिहिर, मार्कण्डेय, आचारमयूख, पराशर, बृहस्पति आदि की संहिताओं और ग्रन्थों से चलता है। जिस प्रतीक पद्धति से उक्त आचार्यों ने स्वप्न के फल बताए हैं, उसे आधुनिक मनोविश्लेषण-शास्त्रियों ने भी अपनाया है। उदाहरण के लिए स्वप्न-विज्ञान में सर्प पुरुष-लिंग या काम (सेक्स) का प्रतीक माना जाता है। भारतीय स्वप्न-वैज्ञानिकों ने भी स्वप्न में सर्प-दर्शन या सर्प-दंश का बड़ा अच्छा फल माना है।[2] स्वप्न में चन्द्रमा को देखना या गर्भिणी स्त्री का यह स्वप्न देखना कि चन्द्रमा उसके पेट में प्रवेश कर रहा है इस बात का लक्षण माना जाता था कि जो पुत्र उत्पन्न होगा वह राजा या चक्रवर्ती होगा।[3] उसी

मानव जाति के गम्भीरतम और व्यापकतम विश्वासों के निर्माण में इनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। स्वप्नदर्शन, भूमिका, पृष्ठ क, ले० राजाराम शास्त्री, १६४७।

१. स्वप्नेन शारीरमभिप्रहत्यासुप्तः सुप्तानभिचाकशीति।
शुक्रमादायपुनरैति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एक हंसः।
—बृहदारण्यक ४-३-१०।

२. उरगो वा जलौका वा भ्रमरो वापि यं दशेत्
आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान्।—'चरक'
उरगो वृश्चिको वापि जले ग्रसति यं नरम्।
विजयं चार्थ सिद्धिंच पुत्र तस्य विनिर्दिशेत्।—'आचारमयूख'

३. "The science of dreams is especially expert in foretelling the birth of a noble son who is quite unexpectedly to become a king".
The Life and Stories of the Jain Saviour Parsvanath; Maurice Bloomfield Baltmore, 1919, p. 189.

तरह स्वप्न में सिंह देखना भी राज्य-प्राप्ति का लक्षण माना जाता था। स्वप्न के आधार पर सन्तान का नामकरण करने का भी संकेत मिलता है।[१] इस प्रकार स्वप्न के फल में भारतीय जनता का आज भी बहुत अधिक विश्वास है। अतः यह आश्चर्य की बात नहीं यदि यहाँ की लोक-कथाओं और कवि-कल्पित कथाओं में स्वप्न से सम्बन्धित रूढ़ियाँ काफी प्रचलित हो गईं।

कुछ आध्यात्मिक, आचारिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ नीचे दी जा रही हैं :

(१) एक जन्म के वैरी या प्रेमी दूसरे जन्म में भी वैरी या प्रेमी के रूप में, (२) पूर्व-जन्म की स्मृति, (३) सत्य-क्रिया या सत्य की परीक्षा, (४) आत्म-रक्षा के लिए जान-बूझकर अज्ञान बनना और इस तरह शत्रु को ही कष्ट में डाल देना, (५) गुफा या चट्टान का बोलना, (६) कौवा और शाल्मली वृक्ष, (७) व्याघ्रकारी (ईर्ष्यावश रानी को व्याघ्रकारी सिद्ध करना), (८) एक ही साथ हँसना और रोना और इस प्रकार रहस्योद्घाटन, (९) स्वप्न में प्रिय-दर्शन, (१०) प्रतीकात्मक स्वप्नों द्वारा भाग्यवान पुत्र की प्राप्ति का संकेत (जैसे चन्द्रपान का स्वप्न देखना या चन्द्रमा को पेट में प्रवेश करते देखना), (११) स्वप्न द्वारा धन-प्राप्ति की सूचना, (१२) अभिज्ञान या सहिदानी, (१३) स्वप्न या चित्र में देखकर अथवा रूप-गुण-श्रवणजन्य प्रेम, (१४) वन में जलाशय के किनारे, मन्दिर में या चित्रशाला में किसी सुन्दरी से भेंट, दृष्टि-मिलन और प्रेम आदि।

५. संयोग और भाग्य से सम्बन्धित रूढ़ियाँ

जीवन के नाना प्रकार के कार्य-कलापों में बहुत से ऐसे भी कार्य होते हैं जो संयोग से घटित होते हैं। संयोग इतना विस्मयकारी और कार्य-कारण की शृङ्खला से रहित होता है कि मानव की बुद्धि उसमें काम नहीं करती। आगे क्या होने वाला है, या हम जो कार्य करने जा रहे हैं, उसमें सफलता मिलेगी या नहीं, इसके बारे में निश्चित रूप से कोई भी कुछ नहीं कह सकता। अतः मानव ने संयोग को देखकर ही भाग्य की कल्पना की। अनेक जातियों में यह माना जाता था और कुछ में आज भी माना जाता है कि ग्रह-नक्षत्र या देवी-देवता हमारे भाग्य-विधाता होते हैं। हिन्दुओं में माना जाता है कि भाग्यलिपि लिखने वाले ब्रह्मा हैं और उन्होंने जो ललाट में लिख दिया है उससे भिन्न कुछ भी घटित नहीं हो सकता। प्लेटो और काण्ट जैसे दार्शनिक भी भाग्य को

१. वही, पृ० १८९।

किसी-न-किसी रूप में स्वीकार करते हैं। भारतीय संस्कृति में कर्मफल को भाग्य से मिला दिया गया है और संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कर्मों में प्रारब्ध को ही भाग्य समझ लिया गया है। इस भाग्यवाद का नियतिवाद से भी गड्डमड्ड हो गया है। नियतिवादी यह मानते हैं कि मनुष्य विवश, अशक्त और निमित्त मात्र है और जो कुछ भी हो रहा है उसका कर्त्ता कोई और है चाहे वह ईश्वर हो या प्रकृति। निष्कर्ष यह कि भाग्य का महत्त्व भारतीय लोक-विश्वास में इतना अधिक है कि बात-बात में उसकी दुहाई दी जाती है। परिणामस्वरूप लोक-कथाओं और शिष्ट साहित्य में भाग्य में विश्वास की अभिव्यक्ति बहुत अधिक हुई है। कवि-कल्पित कथाओं में रोमांच उत्पन्न करने के लिए संयोग का अत्यधिक सहारा लिया गया है और सभी देशों के रोमांचक साहित्य की यह प्रधान प्रवृत्ति रही है। ऐसी कथाओं में कुछ विशेष प्रकार की घटनाएँ बार-बार प्रयुक्त होकर रूढ़ि बन गई हैं। उनमें से कुछ ये हैं—

(१) भाग्य-परिवर्तन अर्थात् भाग्य में लिखी बात को बुद्धिबल या किसी वरदान से टाल देना। (२) लक्ष्मी के स्थान-परिवर्तन से धनी का गरीब और गरीब का धनी हो जाना। (३) वरदानादि से धन प्राप्त होना। (४) राजकुमारी और आधा राज्य या केवल आधे राज्य की प्राप्ति। (५) किसी को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करते समय वही कष्ट अपने ऊपर आ जाना। (६) बन में संयोग से भूत-प्रेत-यक्षादि से भेंट। (७) उजाड़ नगर का मिलना और नायक का वहाँ का राजा होना। (८) जहाज का टूटना और काष्ठ-फलक के सहारे नायक-नायिका की जीवन-रक्षा और वियोग। (९) विजन बन में जलाशय के पास सुन्दरी से साक्षात्कार और प्रेम। (१०) पिपासा और जल लाते समय असुर-दर्शन तथा प्रिया-वियोग आदि।

६. *निषेध और शकुन*

मनुष्य नाना प्रकार के ऐसे गलत और सही विश्वासों का बण्डल है जो उसे परम्परा से संस्कार रूप से प्राप्त होते हैं और जिन्हें वह अपनी विवेक-बुद्धि से युग-युग में बनाता-बिगाड़ता चलता है। एक युग के विश्वास दूसरे युग में भ्रम सिद्ध हो जाया करते हैं और यदि तब भी मनुष्य उनसे जकड़ा रहता है तो वे ही रूढ़ि कहलाते हैं। निषेध और शकुन (Taboo and omen) ऐसे विश्वास होते हैं जिनका बौद्धिक आधार नहीं होता और जो मनोवैज्ञानिक अर्थात् भ्रम पर आधारित होते हैं। निषेधों का प्रारम्भ आदिम

मानव समाज में सम्भवतः लांछन (Totem) से हुआ। प्रत्येक कबीले के कुछ लांछन होते थे अर्थात् किसी पशु-पक्षी-वृक्ष या वस्तु को कबीले का जन्मदाता या देवता का रूप माना जाता था। उसकी पूजा की जाती थी और उसे किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई जाती थी। इस नियम का उल्लंघन निषिद्ध था। ज्यों-ज्यों सामाजिक रीति-रिवाजों में अभिवृद्धि होती गई, उनका उल्लंघन भी सामाजिक अपराध बनता गया, क्योंकि उससे देवता या पूज्य शक्ति के क्रुद्ध होकर पूरे समाज को कष्ट पहुँचाने की आशंका रहती थी। इस प्रकार निषेधों का सम्बन्ध सामाजिक रीति-रिवाजों या नैतिक विश्वासों से है।[1] उदाहरणार्थ बहुत सी जातियों में पत्नी पति को अपना मुँह नहीं दिखाती या पति-पत्नी दूसरों के सामने न परस्पर मिलते-जुलते हैं और न एक-दूसरे का नाम ही लेते हैं। पुरुरवा और उर्वशी की कथा में उर्वशी ने पुरुरवा को नग्न रूप में अपने को दिखाने से मना किया था। एक दिन उसने पुरुरवा को नग्न रूप में देख लिया, फलस्वरूप वह अन्तर्द्धान हो गई। इस कथा में निषेध का स्वरूप स्पष्ट हुआ है। रामायण में सीता के लिए लक्ष्मण द्वारा खींची गई रेखा ऐसे ही निषेध का उदाहरण है। सामाजिक जीवन में प्रायः नाना प्रकार के निषेधों का सामना करना पड़ता है और बुद्धिवादी व्यक्तियों को निषेधों को लेकर समाज से बराबर संघर्ष करना पड़ता है। हिन्दू धर्म में रीति-रिवाजों, खान-पान गमनागमन, आचार-विचार आदि नाना प्रकार के निषेध बताये गए हैं जैसे किस दिन किस दिशा में नहीं जाना चाहिए, समुद्र पार देशों की यात्रा नहीं करनी चाहिए, आदि आदि।

निषेध के समान ही संसार-भर में शुभ शकुन और अपशकुन के घटित होने में भी आदि काल से विश्वास किया जाता रहा है। शकुन मनोवैज्ञानिक वस्तु है अर्थात् उसमें आशा या आशंका का उद्रेक और प्रसार करके कार्य के सम्बन्ध में उत्साह-वृद्धि या इसका निषेध किया जाता है, पर इस मनोवैज्ञा-

१. "It is in the custom of a community that morality manifest itself, but custom sanctions at first many things, by means of taboo, which later are dropped or are forbidden by morality. The violation of custom and of the customary morality of the community is interpreted and is felt to be an offence against the being to whom the community turns in its attempt to escape from calamity or to avert it." Comparative Religion, p. 19-20, F. B. Jevons, Cambridge. 1913.

निक तथ्य को न समझकर सब लोग उसे अन्ध-विश्वास या रूढ़ि के रूप में ही स्वीकार करते हैं। यात्रा प्रारम्भ करते समय छींक अपशकुन है, पर क्यों है, इसके बारे में जानने और समझाने की आवश्यकता कम समझी जाती है। निषेध के समान शकुन का भी सामाजिक जीवन पर बहुत प्रभाव है। उदाहरण के लिए सर्प के फन पर खंजन पक्षी का नाचना धन और राज्य-प्राप्ति का शकुन माना जाता रहा है।

निषेध और शकुन में सामान्य जनता का बहुत अधिक विश्वास रहता आया है, अतः उसके साहित्य में इस विश्वास की अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से हुई है। लोक-कथाओं और उनसे प्रभावित शिष्ट साहित्य में कुछ विशेष निषेध और शकुन जो कथा-प्रवाह को मोड़ने या बढ़ाने में सहायक होते हैं, बार-बार प्रयुक्त हुए हैं। उनमें कुछ ये हैं—

(१) अप्राकृत दृश्य जैसे सर्प के फन पर खंजन पक्षी का नृत्य धन या राज्य-प्राप्ति का सूचक शकुन है। (२) किसी दुर्घटना के सूचक अपशकुन जैसे अपने-आप सिर का हिलना, नाखून का उखड़ना आदि। (३) दैवी दुर्घटना के सूचक अपशकुन जैसे आकाश से खून की वर्षा होना, पृथ्वी का हिलना आदि। (४) कक्ष-विशेष में प्रवेश का निषेध। (५) दिशा या स्थान-विशेष में जाने का निषेध। (६) राक्षस, भूत आदि द्वारा पीछा किये जाने पर पीछे देखने का निषेध। (७) किसी वरद वस्तु (स्वर्ण पंख देने वाले मोर आदि) को छूने का निषेध। (८) किसी विशेष निषेध का उल्लंघन करने पर मानव से पशु-पक्षी के रूप में परिवर्तन या मृत्यु, बीमारी या दुर्बलता, और भाग्य-क्षय।

७. *शरीर वैज्ञानिक अभिप्राय*

कुछ कथानक-रूढ़ियाँ ऐसी भी हैं जिनका उत्स शरीर वैज्ञानिक तथ्य है; उदाहरण के लिए, गर्भिणी स्त्री की दोहद-कामना। यह एक शरीर वैज्ञानिक और अनुभवसिद्ध तथ्य है कि गर्भिणी स्त्री के मन में असामान्य वस्तुओं को खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। वह मिट्टी के बर्तन फोड़कर खाती है। इसका कारण संभवतः उसके शरीर में कुछ तत्त्वों की कमी है, जिनकी पूर्ति के लिए उसके मन में विविध अस्वाभाविक वस्तुओं को खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। चूँकि गर्भिणी स्त्री का बहुत आदर किया जाता है, इसलिए उसकी खाने-पीने की इच्छा के साथ ही अन्य प्रकार की इच्छाएँ पूरी की जाती हैं। इस वैज्ञानिक तथ्य को सम्भावना के आधार पर प्राचीन कथाओं में इतना अधिक बढ़ाया गया है कि वे अतिशयोक्ति का रूप धारण कर लेती हैं। कथाओं

में गर्भिणी स्त्रियाँ पतियों से बड़ी विचित्र-विचित्र माँगें करती हैं और उनकी पूर्ति के लिए पति कठिन प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार कथा स्वभावतः दूसरी ओर मुड़ जाती है।

उसी तरह कबन्ध-युद्ध की कल्पना भी है जो मूलतः शरीर वैज्ञानिक तथ्य पर ही आधारित है, पर सम्भावना के आधार पर उसका अतिशयतापूर्ण विस्तार कर लिया गया है। शरीर की बनावट में हमारे चालक स्नायु-तन्त्र (मोटर नर्व्स) का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। मस्तिष्क के अलग हो जाने पर भी शरीर उन शक्ति-स्नायुओं के द्वारा कार्य करता रह सकता है, क्योंकि वह पहले ही से कोई कार्य कर रहा था। वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि कुत्ते को नदी में तैराकर बीच में ही उसकी गरदन काट दी गई, पर उसका शेष शरीर (कबन्ध) तैर कर नदी के पार चला गया। बकरे सिर कट जाने के बाद भी उछलते-कूदते देखे जाते हैं। इन सबका कारण यह है कि स्नायु-तन्त्र का संचालन दिल (हार्ट) से होता है जो रक्त का वितरण और संचय करता है। चूँकि हृदय कबन्ध वाले अंश में ही होता है अतः सिर कटकर अलग हो जाने के बाद भी शरीर कुछ देर तक कार्य करता रह सकता है। कहा जाता है कि गत महायुद्धों में कुछ कबन्ध लड़ते देखे गए थे। कबन्ध के युद्ध करने की घटना विविध कथाओं में अलौकिक या चमत्कारपूर्ण कार्य के रूप में वर्णित हुई है और इस तरह यह भी एक शरीर वैज्ञानिक तथ्य के आधार पर विकसित कथानक-रूढ़ि है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में विष कन्या के साथ संभोग से शत्रु को मारने की बहुधा कथाएँ मिलती हैं। लैंगिक बीमारियों (वेनरल डिज़ीज़िज़) में से कुछ बड़ी भयंकर होती हैं और आज के युग में तो मारने के लिए सभी बीमारियों के कीटाणुओं का इंजेक्शन भी दिया जाने लगा है। अतः बहुत संभव है कि वैद्यक-शास्त्र के आधार पर बीमारियाँ फैलाने वाली स्त्रियाँ राजनीतिज्ञों और राजपुरुषों द्वारा रखी जाती रही हैं। और शायद उसी बात को सम्भावना के आधार पर आगे बढ़ाकर विष-कन्या की कल्पना कर ली गई है। लिंग-परिवर्तन और नपुंसक बनाने की बात भी बहुत सी कथाओं में आती है। लिंग-परिवर्तन का तो शरीर वैज्ञानिक आधार स्पष्ट है जैसा कि वर्तमान काल में कुछ उदाहरणों से पता चलता है जिनमें शल्य-क्रिया की सहायता से स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन गए हैं। प्राचीन कथाओं की विशेषता यही है कि उनमें चमत्कारजनक ढंग, वरदान या अभिशाप से लिंग-परिवर्तन की बात कही गई है। चिकित्सा भी एक प्रकार का वरदान ही है। अतः हो सकता है कि चिकित्सा-

जन्य लिंग-परिवर्तन को ही वरदान का रूप दे दिया गया हो। इसी तरह की कुछ और रूढ़ियाँ भी हैं जो शरीर-विज्ञान से सम्बन्धित हैं। इनमें से कुछ नीचे दी जा रही हैं—

(१) दोहद-कामना, (२) विष-कन्या, (३) कबन्ध द्वारा युद्ध, (४) लिंग-परिवर्तन और नपुंसक बनाना, (५) पुत्र न होना और यज्ञ-बलिदान, वरदान आदि की सहायता से पुत्रोत्पत्ति। इसमें चिकित्सा द्वारा या मनोवैज्ञानिक आधार पर गर्भ-धारण की बात को चमत्कारक व्यक्तियों या वस्तुओं के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है।

८. सामाजिक रीति-रिवाज और परिस्थितियों का परिचय देने वाले अभिप्राय

यों तो कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन का मूल उद्देश्य ही उनकी सहायता से किसी काल या देश-विशेष की सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करना है और सभी रूढ़ियाँ इस विषय पर कुछ-न-कुछ प्रकाश डालती ही हैं क्योंकि सभी का सम्बन्ध समाज से रहा है और तभी बार-बार प्रयुक्त होने से वे रूढ़ि बनीं, फिर भी कुछ कथानक-रूढ़ियाँ ऐसी हैं जिनमें सामाजिक संघटन, जैसे वर्ण-व्यवस्था, स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, राजा-प्रजा का सम्बन्ध, समाज के विभिन्न वर्गों की सामाजिक स्थिति और महत्त्व, व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध और वर्गों के स्वभाव आदि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। किसी देश या जाति के सामाजिक विकास के इतिहास के साथ मिलाकर वहाँ के साहित्य में प्रचलित कथानक-रूढ़ियों का अध्ययन करने पर उनके विकास के काल का अथवा दूसरी जातियों में उनके ग्रहण किये जाने के काल का पता चल सकता है और साथ ही इससे समाज के विकास के इतिहास की सामग्री भी मिल सकती है। उदाहरण के लिए सामन्त-युग में राजा बहुत सी रानियाँ रखते थे और परिचारिकाओं से भी विवाह कर लेते थे; ऋषि-कन्याओं से भी वे विवाह करते थे। इन सब बातों का पता ये कथानक-रूढ़ियाँ जितना दे सकती हैं उतना इतिहास नहीं दे सकता। सांकेतिक भाषा या गूढ़ संकेत का अभिप्राय भी इतना अधिक प्रयुक्त हुआ है कि इससे पता चलता है कि किसी समय इस तरह की सांकेतिक भाषा अवश्य प्रयुक्त होती थी। ऐसी कुछ कथानक-रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) व्याघ्रकारी, (२) मनादी फेरना और किसी के द्वारा ढोल पकड़ लेना और राजा के पास पहुँचाया जाना, (३) शिवि-अभिप्राय अर्थात् पर-हितार्थ आत्म-बलिदान, (४) स्वामिभक्त सेवक या सम्बन्धी जैसे पुत्र आदि,

(५) मानव-बलिदान, (६) किसी नीच जाति की स्त्री से प्रेम, संभोग और विवाह, (७) राजा का परिचारिका से प्रेम और उसके राजकुमारी होने का अभिज्ञान, (८) गूढ़ विज्ञान या सांकेतिक भाषा, (९) परनारी सहोदर, (१०) नाई और कुम्हार-सम्बन्धी अनुश्रुतियाँ, (११) कुलटा स्त्री का पति को धोखा देना, (१२) मिर्च और कुतिया (परीक्षा) (१३) नायक का औदार्य, (१४) गणिका द्वारा दरिद्र नायक को स्वीकार करना और अपनी माता का तिरस्कार करना, (१५) शत्रु-सन्तापित सरदार और उसकी पत्नी को शरण देना और फलस्वरूप युद्ध, (१७) दुष्ट साधु या योगी का वर्णन और अन्त में उनका पराभव, (१७) घास खाकर दीनता प्रकट करना और प्राण-रक्षा करना।

ऊपर कथानक-रूढ़ियों का जो वर्गीकरण किया गया है वह अन्तिम नहीं है; दूसरे प्रकार से भी, जैसे विषयों के अनुसार, उनका वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसा फादर एलविन वेरियर ने अपनी पुस्तक 'मिथस आव मिडल इण्डिया' में किया है। वस्तुतः सभी कथानक-रूढ़ियों का वर्गीकरण करना सम्भव भी नहीं है, क्योंकि सबके मूल उत्स का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इसके अतिरिक्त एक ही कथानक-रूढ़ि में कई उत्सों का योग भी दिखाई पड़ता है जिससे उसे कई वर्गों में रखा जा सकता है।

४

रासो में लोकाश्रित कथानक-रूढ़ियाँ

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हमारे देश में प्रारम्भ से ही काल्पनिक और ऐतिहासिक काव्यों में कोई तात्विक अन्तर नहीं समझा गया। भारतीय कवियों ने ऐतिहासिक व्यक्तियों में भी निजन्धरी और पौराणिक कथा-नायकों के गुण धर्मों का आरोप किया है और अपनी कथा-वस्तु को उसी ऊँचाई तक ले जाने के लिए उन्होंने उन सभी कथानक-रूढ़ियों का भी उपयोग किया है जो निजन्धरी और पौराणिक कथाओं में दीर्घकाल से व्यवहृत होती चली आ रही हैं। यद्यपि इन कथानक-रूढ़ियों के उपयोग से कथा-प्रवाह में गति और सरसता आती है किन्तु बार-बार प्रयुक्त होने के कारण अनेक अभिप्रायों में से आश्चर्य और सौन्दर्य उत्पन्न करने वाला तत्त्व समाप्त-सा हो गया है।[1]

भारतीय ऐतिहासिक काव्य और कथानक-रूढ़ियाँ

प्रिया की दोहद्-कामना एक अत्यन्त प्रचलित भारतीय अभिप्राय है और प्रायः सभी प्राचीन कथा-संग्रहों और कथात्मक काव्यों में इसका उपयोग हुआ है। कहीं तो इसका उपयोग कथा को गति देने के लिए किया गया है और कहीं अलंकरण-मात्र के लिए। अलंकरण के रूप में इसका उपयोग केवल आश्चर्य और जिज्ञासा उत्पन्न करके कथा में सरसता लाने के लिए ही हुआ है। अपनी व्यापकता और उपयोगिता के कारण ही यह रूढ़ि निजन्धरी कथाओं के माध्यम से ऐतिहासिक चरित-काव्यों में भी ग्रहीत हुई है। 'विक्रमांक देव चरित' में चालुक्यराज सोमेश्वर की रानी को गर्भ के समय कभी

१. "Even the various motifs which occur in legends, fables and plays are worn out by repetition and lose literally their elements of surprise and charm." S. N. Das Gupta and S. K. De, A History of Sanskrit Literature. P. 28.

दिक्कुञ्जरों के कुम्भस्थल पर पैर रखने की इच्छा होती है तो कभी दिशा-वधुओं से पद-सम्वाहन कराने की—

नृपप्रिया स्थापयितुम् पदद्वयीमियेष दिक्कुन्जर कुम्भभित्तिषु
चिराय धाराजलपानलम्पटा कृपाणलेखासु मुमोच लोचने।
मुहुः प्रकोपादुपरिस्थितासु सा चकार तारास्वपि पाटले दृशौ
गुरुस्मया कारयितुम् दिगंगना पदाब्जसम्वाहनमाजुहाव च। २।७४।७६
—इति स्फुरच्चारुविचित्र दोहदा

यहाँ इस अभिप्राय के प्रयोग से न तो कथा में कोई गति आई है और न कथा किसी दूसरी दिशा में ही मुड़ी है। कथा की अलंकृतिमात्र के लिए ही इसका उपयोग किया गया है। प्रायः अधिकांश ऐतिहासिक समझे जाने वाले काव्यों में इसका इसी प्रकार यान्त्रिक ढंग से प्रयोग किया गया है। जैसा कि ब्लूमफील्ड ने लिखा है, "अधिक प्रचलित होने के कारण ही अन्य अभिप्रायों की भाँति इसका भी प्रयोग साहित्य में यान्त्रिक ढंग से हुआ। जैन-ग्रन्थ समरादित्य संक्षेप में गुणसेन और अग्निसेन का जब भी पुनर्जन्म होता है तब उनकी गर्भवती माँ को विचित्र-विचित्र दोहद कामनाएँ होती हैं।"[१] नयचन्द सूरि रचित ऐतिहासिक ग्रन्थ 'हम्मीर महाकाव्य' में भी इसी प्रकार जैत्रसिंह की रानी हीरादेवी पुत्रोत्पत्ति के पूर्व शकों के रक्त में स्नान करने की इच्छा व्यक्त करती है और कवि के कथनानुसार राजा उसकी इस इच्छा को पूर्ण भी करते हैं—

स्वकरांभोजकी नाश दासीकृतशकासृजा।
गर्भानुभावो राजपत्नी सिस्नासतिस्य सा॥
प्रहर्षुलमनः प्रेयः पूरितोद्दामदौहृदा।
समये सुषुवे सूनुम् सा श्रीरिव सुमायुधम्॥ ४।१४१-४२॥

राजतरंगिणी जैसे अधिक ऐतिहासिक समझे जाने वाले ग्रन्थ में भी अनेक कथानक-रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। दो-एक उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'सत्य-क्रिया' एक अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है जिसकी चर्चा पहले की गई है। राजतरंगिणी में कहा गया है कि तुंगजित्र के राज्यकाल में एक बार भयंकर अकाल पड़ा और प्रजा भूख से तड़पकर मरने लगी। राजा का उदार हृदय प्रजा का यह दुख न देख सका और वे बहुत चिन्तित और दुखी रहने लगे। राजा की यह अवस्था देखकर रानी ने कहा, 'महाराज उठिये, राज्य-कार्य देखिए, मेरा वचन कभी असत्य नहीं हो सकता; आपकी प्रजा की विपत्ति

१. जर्नल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी, जिल्द ४०, पृ० ४

टल गई। रानी के इतना कहते ही प्रत्येक घर में मरे हुए कबूतर गिरने लगे। प्रजा की प्राण-रक्षा हुई। राजा की भी प्राण-रक्षा हुई, क्योंकि वे आत्म-हत्या करने के लिए उद्यत हो गए थे।

इसी प्रकार काश्मीरराज मिहिर कुल एक बार जब चन्द्रकुल्या नदी में उतर रहे थे उनके मार्ग में एक बहुत बड़ी चट्टान पड़ी थी जो प्रयत्न करने पर भी वहाँ से ज़रा भी न हटती थी। राजा को स्वप्न में देवताओं ने बताया कि उसमें एक यक्ष निवास करता है और कोई पतिव्रता स्त्री ही उसे हटा सकती है। राजा ने सभी नागरिकों की स्त्रियों को बुलवाया और सभी ने प्रयत्न किया। पर किसी को भी सफलता न मिली। चन्द्रावती नाम की एक कुम्हार की स्त्री ने उसे हटा दिया। 'कथा-सरित्सागर' में इस प्रकार की अनेक घटनाएँ मिलती हैं। तन्त्र-मन्त्र, शकुन-अपशकुन, भूत-प्रेत आदि में विश्वास तथा अनेक अलौकिक व्यक्तियों और अतिप्राकृत घटनाओं से राजतरंगिणी भरी पड़ी है। राजतरंगिणी के लेखक ने अधिकांश राजाओं को मन्त्र-तन्त्र द्वारा मारा है। उसमें मुनि, साधु और ब्राह्मण तो शाप देते ही हैं, रानियाँ भी शाप देती हैं। शिव हारकेश्वर का मन्त्र सीखकर राजा पाताल में जाते हैं और वहाँ अद्भुत कार्य करते हैं। जटिल परिस्थितियों में आकाशवाणी से सहायता मिलती है। लंका से राक्षस मँगाए जाते हैं और उनसे अनेक असम्भव कार्यों की सिद्धि में सहायता मिलती है। इतिहासकार के लिए इन घटनाओं के बीच से ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ निकालना कठिन हो जाता है। वह उन्हें छाँटकर परिशिष्ट में डाल देता है। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र दत्त ने राजतरंगिणी के अनुवाद में [1] इस प्रकार की सभी घटनाओं को परिशिष्ट में रख दिया है, क्योंकि इतिहासकार के लिए ऐसी घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं है। पद्मगुप्त के ऐतिहासिक काव्य 'नवसाहसांक' चरित की तो लगभग पूरी कथा ही निजन्धरी अभिप्रायों के आधार पर खड़ी की गई है।

पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि अधिक-से-अधिक ऐतिहासिक समझे जाने वाले काव्यों में भी कथा को अभीष्ट दिशा में मोड़ने तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अनेक कथानक-रूढ़ियों का उपयोग किया गया है। भारतीय ऐतिहासिक काव्यों और उनके कर्त्ताओं की इस प्रवृत्ति को ठीक-ठीक न समझ

१. Ramesh Chandra Datta—"Kings of kashmir", 1898.
(Translation of Rajatarangini)

सकने के कारण ही अनेक विद्वान् इन रूढ़ियों के अन्दर से ऐतिहासिक तथ्य ढूँढ़ निकालने में ही उलझ गए। परवर्ती काल के ऐतिहासिक काव्यों में तो इन रूढ़ियों का इतना अधिक प्रयोग हुआ कि ऐतिहासिक तथ्य बिलकुल गौण हो गया और ये रूढ़ियाँ ही प्रमुख हो उठीं। पृथ्वीराज रासो और पद्मावत इसी काल के काव्य हैं और अन्य ऐतिहासिक काव्यों की भाँति इनमें भी अनेक ऐसी कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है जो निजन्धरी कथाओं में दीर्घ काल से प्रयुक्त होती चली आ रही हैं।

जैसा कि शुरू में कहा गया है भारतीय कथानक रूढ़ियों में से कुछ रूढ़ियाँ तो निजन्धरी विश्वासों पर आधारित हैं और कुछ कवि-कल्पित हैं। रासो में इन दोनों प्रकार के अभिप्रायों का प्रयोग हुआ है। निजन्धरी विश्वासों पर आधारित स्पष्ट दिखाई पड़ने वाली महत्त्वपूर्ण रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) लिंग-परिवर्तन, (२) सांकेतिक भाषा, (३) पूर्व जन्म की स्मृति, (४) मुनि का शाप, (५) अतिप्राकृत दृश्य द्वारा लक्ष्मी-प्राप्ति का शकुन, (६) वरदानादि से धनी हो जाना, (७) फलादि द्वारा सन्तानोत्पत्ति, (८) अतिप्राकृत जन्म, (९) भविष्य-सूचक स्वप्न, (१०) मन्त्र-तन्त्र की लड़ाई, (११) योगिनी की सहायता, (१२) मृतक का पुनः जीवित हो जाना, (१३) आकाशवाणी, (१४) अलौकिक व्यक्तियों द्वारा सहायता, (१५) राजा का दैवी चुनाव। ये सभी अभिप्राय रासोकार की अपनी कल्पना की उपज नहीं हैं, भारतीय कथा साहित्य में इनका कई स्थानों पर कई रूपों में प्रयोग हुआ है। इन्हें ठीक-ठीक समझने तथा इनके उचित मूल्यांकन के लिए इन सभी रूढ़ियों पर अलग-अलग तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है।

लिंग-परिवर्तन—लिंग-परिवर्तन सम्बन्धी रूढ़ि का कहानियों में कई प्रकार से उपयोग किया गया है। पृथ्वीराज रासो में कनवज्ज समय में अत्ता-त्ताई की जिस कहानी में इस अभिप्राय का उपयोग हुआ है वह इस प्रकार है— "दिल्ली राज्य के अन्तर्गत ही आसापुर के राजा चौरंगी चौहान को पुत्री उत्पन्न हुई, किन्तु माता ने यह प्रकट किया कि पुत्र उत्पन्न हुआ है। चारों ओर पुत्रो-त्सव मनाया गया और वह कन्या पुरुष-वेश में ही राजदरबार में आने-जाने भी लगी। बारह वर्ष की अवस्था होने पर माता और पुत्री दोनों बड़े संकट में पड़े, क्योंकि अब पुत्र कहकर उसे छिपा रखना सम्भव नहीं था। माता उसे लेकर हरिद्वार चली गई। वहाँ एक दिन आधी रात को वह कन्या शिव-मन्दिर में गई और वहाँ उसने घोर तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न किया। कन्या ने शिव से पुरुषत्व-प्राप्ति का वरदान माँगा। शिव ने कहा, 'तेरे पिता चौरंगी चौहान

को मैंने पुत्रोत्पत्ति का वरदान दिया था। तुझे पुरुषत्व-प्राप्ति का वर देकर उसे आज प्रमाणित कर रहा हूँ। तू अभी कुछ दिन और साधना कर, मैं तुझे ध्यान में दर्शन देकर तेरे मनोरथ को पूर्ण करूँगा।' स्वप्न में दर्शन देकर शिव ने उसके मनोरथ को पूर्ण तो किया ही, इसके साथ-ही-साथ उसे अतुल शक्ति-सम्पन्न होने का भी वरदान दिया। इस प्रकार उसकी पुरुषत्व-प्राप्ति की कहानी सुनकर उसके माता और पिता दोनों को आश्चर्य तथा प्रसन्नता हुई और अनंगपाल के दरबार में उसका सम्मान बढ़ गया।[१]

अत्ताताई के स्त्री से पुरुष-रूप धारण करने की कहानी कवि चन्द स्वयं पृथ्वीराज को युद्ध-स्थल में बतलाता है। संयोगिताहरण हो चुका है और पृथ्वीराज जयचन्द की सेना से घिर गया है। पृथ्वीराज के दिल्ली की ओर भागने के लिए मार्ग तैयार करने में अनेक योद्धा मर चुके हैं। इसी समय अत्ताताई अतुल पराक्रम द्वारा वीरों का संहार करता है और मरने पर उसका धड़ एक गन्धर्व गंगा जी में डाल देता है और उसका शीश जोगिनियाँ उठा ले जाती हैं। अत्ताताई के अद्भुत साहस और इस आश्चर्यजनक दृश्य को देखकर पृथ्वीराज उसकी उत्पत्ति के बारे में चन्द से पूछते हैं।

भारतीय साहित्य में लिंग-परिवर्तन के अभिप्राय का सबसे प्राचीन रूप हमें महाभारत में मिलता है। महाभारत के उद्योग पर्व में जन्मान्तर में शिखण्डी के लिंग-परिवर्तन की कहानी कही गई है। राजा द्रुपद भीष्म से बदला लेने के लिए पुत्र की कामना करते हैं। शिव से उन्हें ऐसी सन्तान की उत्पत्ति का वरदान मिलता है जो स्त्री भी होगा और पुरुष भी। कुछ दिन में लड़की उत्पन्न होती है, किन्तु शिव के वरदान का विश्वास करके द्रुपद पुत्रोत्पत्ति की घोषणा करते हैं और उसका पुत्रवत् पालन-पोषण भी होता है। बड़े होने पर विवाह की समस्या उठती है और एक शक्तिशाली राजा की लड़की से विवाह भी हो जाता है। विवाह के बाद लड़की को पता चलता है कि उसे धोखा दिया गया है और उसका विवाह एक लड़की से ही हुआ है। उसके पिता द्रुपद के ऊपर आक्रमण करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। इसी बीच शिखण्डी जंगल में आत्महत्या करने के लिए जाती है और एक यक्ष से उसकी भेंट हो जाती है। यक्ष को दया आती है और जब तक शिखण्डी का खतरा दूर नहीं होता तब तक के लिए अपना पुरुषत्व शिखण्डी को दे देता है और उसका स्त्रीत्व स्वयं ले लेता है। परिणामस्वरूप दोनों राजाओं में सन्धि हो जाती है। किन्तु इधर कुबेर को यक्ष के कृत्य का पता चल

१. समय ६१ छन्द, १६७०, २००७।

जाता है और वे उसे सर्वदा के लिए स्त्री हो जाने का श्राप देते हैं। पर दूसरे यक्षों की प्रार्थना पर उसमें इतनी कमी की जाती है कि श्राप का प्रभाव शिखण्डी की मृत्यु तक ही रहेगा। शिखण्डी अपने वादे के अनुसार यक्ष के पास आता है; वहाँ उसे कुबेर के श्राप का पता चलता है और वह प्रसन्नता-पूर्वक अपनी पत्नी के पास लौट जाता है।

भारत के विभिन्न भागों में इस कहानी के विभिन्न रूपान्तर पाए जाते हैं। एक 'गुल बकावली' शीर्षक से इज्जतउल्ला ने १७१२ में फारसी में लिखी थी और दूसरा रूपान्तर डुवास के पंचतन्त्र (पृ० १५) में आया हुआ है जो इस कहानी के तमिल रूपान्तर पर आधारित है। कथासरित्सागर (१२,१६) में महाश्वामिन, मन्त्राभिषिक्त जड़ी के मुख में रख लेने पर स्त्री रूप में बदल जाता है और उसे निकाल देने पर पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाता है। इस कौशल का उपयोग वह अपनी प्रियतमा राजकुमारी शशिप्रभा का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए करता है। महाश्वामिन को यह जड़ी मन्त्र-तन्त्र की विद्या में निष्णात मूलदेव नामक मन्त्री से प्राप्त होती है जो स्वयं एक जड़ी के द्वारा अपने को एक वृद्ध ब्राह्मण के रूप में बदलकर महाश्वामिन की सहायता करता है।

कथाकोश (टानी, पृ० ११०) में एक लड़की मन्त्र की जड़ी को कान में रखती है और लड़के के रूप में बदल जाती है।

इस प्रकार भारतीय साहित्य में इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कहानियों की कथावस्तु मुख्य रूप से दो प्रकार की है :

(१) लड़की के उत्पन्न होने पर किसी कारण से उसे लड़के के रूप में अन्य लोगों के सामने रखना और युवावस्था में अथवा विवाह के बाद इस रहस्य का उद्घाटन। फलस्वरूप लड़की का जंगल में जाकर किसी अलौकिक व्यक्ति की सहायता से पुरुषत्व प्राप्त करना।

(२) नायक-नायिका का एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होना और शारीरिक सुख की प्राप्ति के लिए नायक का किसी मन्त्राभिषिक्त जड़ी, गोली आदि द्वारा स्त्री-रूप धारण करके नायिका से मिलना।

दूसरे प्रकार की कहानियों में ही अवैधानिक रूप से यौन-सुख की प्राप्ति के लिए नायक को अस्थायी रूप से किसी पशु-पक्षी के रूप में बदलकर रखने के उदाहरण भी अधिक मिलते हैं। पशु-पक्षियों को रखने में किसी को कोई सन्देह या आपत्ति नहीं हो सकती थी, इसलिए यह तरीका ही लोक-कथाओं में अधिक प्रचलित है।

इन उदाहरणों में लिंग-परिवर्तन किसी मंत्राभिषिक्त गोली, जड़ी अथवा किसी अलौकिक व्यक्ति की सहायता से कराया गया है। किन्तु जब यह अभिप्राय पश्चिम की कहानियों में गृहीत हुआ तो वहाँ जल मुख्य माध्यम बना। इस प्रकार का परिवर्तन वहाँ प्रायः किसी जादू के जलाशय, झील अथवा सोते में स्नान करने के कारण हुआ है। पश्चिमी देशों में भी यह अभिप्राय कितना प्रचलित है, उसके उदाहरण में पेंजर ने पश्चिम में प्रचलित लिंग-परिवर्तन-सम्बन्धी अनेक कहानियों को उद्धृत किया है।[1]

यहाँ यह प्रश्न होता है कि इस प्रकार के विचार का जन्म किस प्रकार हुआ? क्या यह कहानीकारों की विशुद्ध कल्पना का परिणाम है अथवा इसका आधार किसी प्रकार का धार्मिक अथवा नृतत्त्व-शास्त्र-सम्बन्धी विश्वास है?

भारतीय लोकवार्ता (फोकलोर) में इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि लोग स्त्री के पुरुष और पुरुष के स्त्री रूप में बदल जाने की बात को सत्य समझते हैं और लोक-विश्वास के रूप में जनता के जीवन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। एन्थोवेन ने अपनी 'फोकलोर ऑव बाम्बे' (पृ० ३४०) पुस्तक में लिखा है कि बम्बई जिले की ग्रामीण जनता में आमतौर पर यह विश्वास पाया जाता है कि कुछ तांत्रिक क्रियाओं द्वारा लिंग-परिवर्तन हो सकता है; साथ ही योगियों और महात्माओं के मन्त्र-तन्त्र और शाप में भी पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बना देने की शक्ति है।

इसके साथ-ही-साथ भारत के विभिन्न भागों में ऐसी लिंग-परिवर्तन-सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। आगरा से ४० मील दक्षिण-पश्चिम में जमुना के दाएँ किनारे पर वटेश्वर एक छोटी-सी जगह है। वहाँ नदी के किनारे मीलों तक अनेक मन्दिर बने हुए हैं। उन मन्दिरों के बारे में वहाँ एक कहानी प्रचलित है कि जब भदूरिया राजा लोग राज्य करते थे तो यह नियम बना हुआ था कि प्रत्येक राजा अपनी एक राजकुमारी को दिल्ली के बादशाह के हरम में भेजे। भदूरिया राजा की भी एक पुत्री थी, किन्तु वह नहीं चाहते थे कि उनकी लड़की मुसलमान के यहाँ जाय, इसलिए उन्होंने यह प्रकट किया कि उनके कोई लड़की नहीं है। अन्य राजा, जो अपनी पुत्रियों को हरम में भेज चुके थे, इससे बहुत क्षुब्ध हुए और बादशाह को इस रहस्य की सूचना दे दी। बादशाह ने राजा के अन्तःपुर की जाँच की आज्ञा दी। ऐसी स्थिति आने पर राजा की पुत्री अकेले वटेश्वर भाग गई और वहाँ उसने एक मन्दिर में देवी की प्रार्थना की। देवी की कृपा से वह लड़का हो गई। राजा की

१. पेंजर, द ओशन ऑफ स्टोरी, जिल्द ७, पृ० २२४।

प्रसन्नता की सीमा न रही और उन्होंने यमुना के किनारे अनेक मन्दिर बनवा दिए जो आज भी स्थित हैं।[1]

इसी कहानी का दूसरा रूप यह है कि किसी जगह के राजा हर और भदूरिया राजा बदन के बीच यह निश्चित हुआ कि अगर एक को पुत्र और दूसरे को पुत्री उत्पन्न होगी तो दोनों का विवाह कर दिया जायगा। दोनों को पुत्री उत्पन्न हुई, किन्तु भदूरिया राजा ने कहा कि उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ है। फलस्वरूप समय पर विवाह हो गया। शीघ्र ही इस रहस्य का उद्‌घाटन हुआ और राजा हर इस अपमान का बदला लेने के लिए एक बड़ी सेना लेकर आ धमके। भदूरिया राजा की पुत्री ने इस संकट को दूर करने के लिए आत्महत्या करने का निश्चय किया। वह यमुना में कूद पड़ी, किन्तु लोगों ने आश्चर्यचकित होकर देखा कि डूबने के बजाय वह लड़के के रूप में बाहर निकली। राजा हर को विश्वास हो गया कि भदूरिया राजा ने सच कहा था और उनकी लड़की एक राजकुमार से ब्याही गई है। इसी प्रसन्नता में भदूरिया राजा ने उन मन्दिरों को बनवाया।[2]

बम्बई प्रेसिडेन्सी के गजट (जिल्द ७, १८८३, पृ० ६१२) में इसी कहानी से मिलती-जुलती एक कहानी दी हुई है। इसमें भी दो राजाओं के बीच इसी प्रकार का वादा होता है और इसी प्रकार इसमें भी अन्त में लड़की को लड़का बताकर विवाह करने वाले राजा के ऊपर आपत्ति आती है। किन्तु इस कहानी में लिंग-परिवर्तन का माध्यम भिन्न है। लड़के के रूप में रखी हुई लड़की भागकर एक जंगल में जाती है। वहाँ उसकी कुतिया एक जलाशय में कूदती है और उसके जलाशय से निकलने के बाद राजकुमारी को यह देखकर आश्चर्य होता है कि उसका लिंग-परिवर्तन हो गया है। यही दशा राजकुमारी की घोड़ी की भी होती है। अन्त में राजकुमारी स्वयं कूदती है और पुरुष के रूप में जलाशय से निकलती है।

रसेल (Russel) ने अपनी पुस्तक 'ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स ऑफ द सेंटल प्राविन्स' (खण्ड २, पृ० ४००) में लिखा है कि 'बिलासपुर की धनवार नामक आदिवासी जाति में यह विश्वास पाया जाता है कि जन्मान्तर में लिंग-परिवर्तन हो जाता है।' अवसर-विशेष पर लड़की को लड़का और लड़के को

१. पेंजर, द ओशन ऑफ स्टोरी, जिल्द ७, पृ० २२६।
अन्य रूपान्तर के लिए देखिए—एन्थोवेन की पुस्तक 'फोक लोर ऑफ बांबे, पृ० ३३६-४०, इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द ४१, पृ० ४२।

२. द ओशन ऑफ स्टोरी, पेंजर, जिल्द ७, पृ० २२६-३०।

लड़की की वेशभूषा में रखने की प्रथा सामान्यतया सभी देशों में पाई जाती है।

देवी-देवताओं के लिंग-परिवर्तन की कहानियाँ भी अधिकता से मिलती हैं। कभी-कभी तो एक ही देवता में दोनों लिंगों का आरोप कर दिया जाता है जैसे शिव का ही दूसरा नाम अर्धनारीश्वर भी है। इस प्रकार के धार्मिक विश्वास को यदि लिंग-परिवर्तन का मूल आधार न भी मानें तो भी इतना तो माना ही जा सकता है कि इस अभिप्राय के प्रचार और प्रचलन में इस विश्वास ने काफी योग दिया होगा।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि यह रूढ़ि कवियों या कहानी कहने वालों की कोरी कल्पना पर आधारित नहीं है; मानव-समाज में इस पर जीवित सत्य (लिविंग रियालिटी) के रूप में विश्वास किया जाता था। इस विश्वास पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान ने इसे सत्य सिद्ध कर दिया है।

सांकेतिक भाषा

विभिन्न वस्तुओं की सहायता से सांकेतिक भाषा द्वारा अपने मनोभावों को व्यक्त करने की परम्परा भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्रचलित है। इस तरीके का उपयोग सभी पूर्वी देशों में व्यापक रूप से प्रचलित है। इसके साथ-ही-साथ अमेरिका और अफ्रीका के कुछ भागों में भी सांकेतिक भाषा का प्रयोग पाया जाता है। कुछ विद्वानों के मत से स्त्रियों के सामाजिक जीवन से अलग एक सीमित घेरे में बँधे रहने के कारण ही इस प्रकार संकेतों द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने की प्रथा पूर्वी देशों में विशेष रूप से पाई जाती है। किसी पर-पुरुष से बात करना स्त्रियों के लिए अशोभन समझा जाता है, इसका परिणाम यह हुआ है कि उन्हें अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए ऐसे कौशलों का सहारा लेना पड़ता है जिससे किसी को किसी प्रकार की आपत्ति या सन्देह न हो। अशिक्षा के कारण लेखन-कला से अनभिज्ञता भी इस प्रकार की भाषा के प्रचार का कारण है। इसके साथ-ही-साथ अपने प्रिय के पास प्रेम-पत्र भेजने में अनेक खतरों की सम्भावना ने भी सांकेतिक भाषा की उत्पत्ति में योग दिया है, क्योंकि संकेतों द्वारा स्त्री अपने प्रेमी अथवा किसी अपरिचित पथिक तक को तुरन्त रहस्यात्मक ढंग से अपने मन की बात बता सकती है।

यही कारण है कि भारतीय साहित्य में—विशेष रूप से कहानियों में—सांकेतिक भाषा का प्रयोग बहुत अधिक मिलता है। स्त्रियों और प्रेम-

व्यापारों तक ही सीमित न रहकर इसका उपयोग पुरुषों और युद्ध-स्थलों तक में पाया जाता है। रासो में पृथ्वीराज कवि चन्द को चालुक्यराज भीम के पास एक चोली और एक लाल पगड़ी देकर भेजते हैं। कवि चन्द चलते समय कुछ और वस्तुएँ साथ ले लेता है। गले में नाली और नसेनी डाल लेता है, और एक हाथ में कुदाली और दूसरे में अंकुश तथा त्रिशूल ले लेता है—

चलौ चन्द गुज्जरह गरै जारी जंजारह।
नीसरनी कुद्दाल दीप अंकुस आधारह।
करन सूल संग्रहै गयौ चालुक दरबारह।
इह अचम्भ जन देखि मिल्यौ पेषन संसारह।

भीमदेव की समझ में नहीं आता कि इसका क्या रहस्य है? तब चन्द प्रत्येक वस्तु का अर्थ बतलाता है। उनका अर्थ यह है कि यदि भीम आत्म-रक्षा के लिए जल में भी जाकर छिपेगा तो पृथ्वीराज उसे इस जाल की सहायता से पकड़ मँगाएगा, आकाश में शरण लेने पर इस नसेनी से काम लेगा, पाताल में जाने पर कुदाल से खोद निकालेगा और अँधेरे में छिपने पर दीपक द्वारा ढूँढ़ लेगा। इस प्रकार अन्त में उसे पकड़कर और अंकुश द्वारा वश में करके त्रिशूल से मार डालेगा।

एन जाल संग्रहौ जान जल भीतर पड्यो
इन नीसरनी ग्रहो जान आकासह चढ्यो
इन कुद्दालै खनौ जाम पायाल पनट्ठो
इन दीपक संग्रहौ जाम अंधारै नट्ठौ
इन अंकुस असि बसि करौं इन त्रिसूल हनि हनि सिरौं।

इस अभिप्राय की एक विचित्र विशेषता यह है कि जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके सांकेतिक चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, वह उनके अर्थ को नहीं समझता। प्रायः उसका कोई मित्र या गुरु उसे इसका अर्थ बतलाता है। यहाँ कवि चंद स्वयं उसका अर्थ बतलाता है, क्योंकि यहाँ कवि का उद्देश्य भीमदेव को अपमानित और उत्तेजित करना है। परिशिष्ट ११ में नन्द का प्रधान मन्त्री कल्पक अपनी बौद्धिक विशेषता के प्रदर्शन द्वारा शत्रु को आतंकित करने के लिए सांकेतिक भाषा में उनसे बात करता है। नन्द के ऊपर उसके सामन्त आक्रमण कर देते हैं। ऐसे संकट के समय में उनका प्रधान-मन्त्री कल्पक अन्य मन्त्रियों के षड्यन्त्र और राजा की मूर्खता के कारण कारागृह में सपरिवार मर रहा है। आक्रमण के समय राजा को कल्पक का महत्त्व मालूम पड़ता है और यह मालूम होने पर कि कुएँ में अभी भी एक

कैदी जीवित है, राजा उसे निकलवाते हैं। संयोग से कल्पक ही जीवित निकलता है। शत्रुओं को आतंकित करने के लिए शत्रु को दिखाकर उसे पालकी में घुमाया जाता है; किन्तु शत्रु यह समझकर कि यह सब उन्हें भयभीत करने के लिए किया जा रहा है, पुनः आक्रमण करना प्रारम्भ कर देते हैं। कल्पक शत्रु के सन्धि-विग्रहक से गंगा में नाव पर मिलने का प्रस्ताव करता है। जब दोनों की नौकाएँ थोड़ा निकट आ जाती हैं तब कल्पक गन्ने का एक टुकड़ा लेकर उसके दोनों सिरों की संधियों को काट देता है और आंगिक संकेत द्वारा शत्रु से इसका अर्थ पूछता है। सन्धि-विग्रहक इसका अर्थ नहीं समझ पाता; जो यह है कि जिस प्रकार गन्ना दोनों सन्धियों से बढ़ता है, उसी प्रकार क्षत्रिय सच्ची अथवा झूठी सन्धियों द्वारा ही प्रभुत्व प्राप्त करते हैं और चूँकि शत्रुओं ने नन्द के साथ सच्ची और झूठी किसी प्रकार की सन्धि नहीं की इसलिए युद्ध में सफलता की आशा उन्हें नहीं करनी चाहिए। इसके बाद उसने एक आभीर लड़की की ओर संकेत किया जो अपने सिर पर मट्ठे का घड़ा लिये थी। इस संकेत द्वारा उसने यह बतलाया कि जिस प्रकार दही को मथकर यह मट्ठा तैयार किया गया है उसी प्रकार शत्रु की सेना को मथकर तितर-बितर कर दिया जायगा। अन्त में उसने अपनी नाव को उसकी नाव के चारों ओर ले जाकर यह बतलाया कि शत्रु को सब तरफ से परास्त किया जायगा। शत्रु सन्धि-विग्रहक किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर यह सब देखता रहा, उसकी समझ में कुछ न आया और अपनी सेना में आकर उसने यह स्वीकार किया कि कल्पक के विचित्र व्यवहार का वह कुछ भी अर्थ न समझ पाया। परिणामस्वरूप आतंकित होकर शत्रु अपनी सेना के साथ भाग खड़े हुए।

इस अभिप्राय का प्रयोग मुख्यतः प्रेम-कथाओं में ही किया जाता है। यद्यपि ऊपर के उदाहरणों में भी इसका उपयोग कथा में गति लाने के लिए ही किया गया है किन्तु उतनी गति और विस्तार उनमें नहीं आ पाया है, जितना कि प्रेम-व्यापारों में इस रूढ़ि के उपयोग से आ जाता है। इसका वास्तविक चमत्कार भी प्रेम-कथाओं में ही दिखाई पड़ता है, जहाँ कहीं तो नायिका कालिख लगे हाथों से दूती को पीटती है और उसकी पीठ पर पड़ी पाँचों उँगलियों की छाप द्वारा नायक को कृष्ण पंचमी की रात्रि में मिलने का संकेत करती है

स दध्यौ कृष्ण पंचम्यां सा संकेतमदाद ध्रुवम ।
पंचांगुलिर्मषीहस्तः पृष्ठेऽस्या यददीयत ।। परिशिष्ट पर्वन ४८६ ।

और कहीं दूती का गला पकड़कर अशोक कुंज के बीच से घसीटते हुए पश्चिमी द्वार से बाहर ढकेलकर मिलने का स्थान बताती है—

दुर्गिला भर्त्सनापूर्वं गले धृत्वा रुषेव ताम्
अशोकवनिका प्रत्यग्द्वारेण निरसारयत् ।

× × ×

दध्यौ च धीमान्स पुमानशोक वनिकान्तरे
आगच्छेरिति संकेतो नूनं दत्तस्तया मम ।

'कथासरित्सागर' और जैन 'कथाकोश' में तो रूढ़ि का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। कथासरित्सागर में पद्मावती व्रजमुकुट को इसी प्रकार अपना और अपने पिता का नाम तथा निवास-स्थान बतलाती है। वन में झील के किनारे सखियों से घिरी होने के कारण वह प्रत्यक्ष तो एक अपरिचित से बात नहीं कर सकती, इसलिए मनोरंजन के बहाने अपने हार से एक कमल तोड़कर कान में रखती है और दन्त-पत्र के रूप में उसे थोड़ी देर तक मरोड़ती रहती है। इसके बाद दूसरा फूल लेकर मस्तक पर रखती है और एक हाथ वक्षस्थल पर रखती है। व्रजमुकुट इसका अभिप्राय स्वयं नहीं समझ पाता। उसका मित्र उसे बताता है कि कान में फूल रखकर उसने यह बताया कि कर्णोत्पल नामक राजा के राज्य में वह रहती है; दन्तपत्र के रूप में उसे मरोड़ने का अर्थ है कि वह किसी दांत बनाने वाले की लड़की है; मस्तक पर कमल रखने का अर्थ है कि उसका नाम पद्मावती है। हृदय पर हाथ रखकर उसने यह बताया कि उसका हृदय तुम्हारा हो चुका है।

डब्ल्यू कूक ने 'भारत में व्यवहृत रहस्यमय सन्देश और प्रतीक'[1] शीर्षक निबन्ध में छड़ी, माला, तीर आदि का किस प्रकार भारत में संकेत और प्रतीक के रूप में उपयोग किया जाता है इसके अनेक उदाहरण दिये हैं। उनके अनुसार भारत में कहीं-कहीं मीठी सुपारी से युक्त पान के साथ पान की पत्ती और कोई फूल भेजने का अर्थ होता है 'मैं तुम्हें प्यार करता हूँ'। यदि सुपारी कुछ अधिक रखी हुई है और पत्ती का एक कोना विशेष प्रकार से मुड़ा हुआ है तो इसका अर्थ है 'आओ'। उसके अन्दर हल्दी भी रखी जाती है तो इसका अर्थ है 'मैं नहीं आ सकता'। कोयले का एक टुकड़ा रखने का अर्थ है 'जाओ, मेरा काम हो गया'।

---

१. जर्नल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, १९१९, पृ० ४५१-५२।

पूर्व जन्म की स्मृति

'चन्द द्वारिका गमन' नामक बयालीसवें समय में चित्रकोट या चित्तौड़ गढ़ की पूर्वकथा में यह कहानी दी हुई है कि जिस समय मोरी राजा ने गढ़ के पास गोमुख कुण्ड और आनन्द उपवन बनवाना शुरू किया, उस समय खोदने पर वहाँ पहाड़ की एक कन्दरा के भीतर एक ऋषि दिखलाई पड़े जिनके सम्मुख एक सिंहनी उनके शिष्य को भक्षण करने जा रही थी। वहीं इस दृश्य की पूर्वकथा भी दी हुई है। ऋषि अयोध्या के कीर्तिधवल नामक राजा हैं और वह सिंहनी उनकी पूर्वजन्म की रानी। राजा को एक गर्भवती हरिणी को मारने के कारण वैराग्य उत्पन्न हो गया। रानी को इस समाचार से इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे मार्ग नहीं सूझा। गवाक्ष मार्ग से ही वह मिलने के लिए दौड़ी, फलस्वरूप पृथ्वी पर इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। रानी ने सिंहनी का जन्म पाया और संयोग से उसी स्थान पर जा पहुँची जहाँ कीर्तिधवल पुत्र के साथ तपस्या कर रहे थे। क्षुधा-पीड़ित सिंहनी राजकुमार पर टूट पड़ी किन्तु ज्यों ही उसने मांस खाना चाहा उसे पूर्वजन्म की सुधि आ गई। वह उसी अवस्था में वहाँ खड़ी रह गई। बिना भोजन पानी के वह एक महीने तक वहीं आँसू बहाती रही; अन्त में उसके प्राण निकल गए (६०८-१५)।

इस कहानी में 'पूर्व जन्म की स्मृति' इस अभिप्राय का उपयोग किया गया है। जन्म-जन्मान्तर तथा कर्मफल की अनिवार्यता में विश्वास भारतीय चिन्ताधारा की एक प्रमुख विशेषता है और इस अभिप्राय के मूल में भी यही विश्वास है। पहले ही कहा जा चुका है कि अपने शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ही जीव विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। कर्मों के बन्धन के कारण उसे अपनी पूर्व योनि की कोई स्मृति नहीं रहती, किन्तु किसी विशेष पुण्य कर्म के परिणामस्वरूप अथवा किसी देवी-देवता के वरदान से उसे यह शक्ति प्राप्त हो सकती है। इस विचार का जैन, बौद्ध, हिन्दू सभी कथाओं में उपयोग किया गया है और एक ही व्यक्ति के जन्म-जन्मान्तरों की कथा कहकर कथा का विस्तार भी खूब किया गया है। प्रायः पात्रों को पूर्व जन्म की स्मृति दिलाकर और उनके पूर्वजन्म की कहानी कहकर कथा को आगे बढ़ाने का कहानीकारों ने मौका ढूँढ़ा है। कथासरित्सागर में नागश्री को अचानक अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आता है और वह अपने पति से कहती है कि 'मुझे अपने पूर्वजन्म की बातें स्पष्ट स्मरण आ रही हैं, किन्तु मैं इस द्वन्द्व में पड़ गई हूँ कि इन्हें आपको बता दूँ या न बताऊँ। अगर मैं बता देती हूँ तो

मेरी मृत्यु हो जायगी, क्योंकि लोग कहते हैं कि अगर किसी को पूर्वजन्म का स्मरण हो आए तो उसे कहना नहीं चाहिए, कहने से मृत्यु हो जाती है। फिर भी मुझसे बिना कहे रहा नहीं जाता।'

राजन्नकाण्ड एवाद्य पूर्वजन्म स्मृता मया।
अप्रीत्यै तदनाख्यातमाख्यातं मृतये च मे।
अशंकितं स्मृता जातिः स्यादाख्यातैव मृत्यवे।
इतिह्याहुरतो देव गच्छतीव विषादिता॥ आदिस्तरंग २७।

इतना सुनते ही धर्मदत्त को भी पिछले जन्म का स्मरण हो आता है और यहाँ कहानीकार को दोनों के पूर्वजन्म की कथा कहने का अवसर मिल जाता है।

कथासरित्सागर में ही एक स्थान पर कुछ शिष्यों को गुरु के सम्मुख सत्य-कथन के कारण यह शक्ति प्राप्त होती है कि अगले जन्म में उन्हें अपने-अपने पूर्वजन्म का स्मरण रहे। इसी प्रकार कर्पूरिका को पूर्वजन्म के स्मरण की शक्ति शिव के वरदान से प्राप्त होती है। वह अपना विवाह इसीलिए नहीं करती कि उसे अपने पूर्वजन्म में, जब वह स्त्री योनि में ही थी, पति की निष्ठुरता का प्रमाण मिल चुका था। इसीलिए उसने शिव से यह वरदान माँगा कि वह अगले जन्म में राजपुत्री हो और उसे पिछले जन्म की सभी बातें याद रहें—

तन्मे किममुना पत्या किं वा देहेन दुःखिना।
इत्यालोच्य हरं नत्वा कृत्वा भक्त्या च ते हृदि।
तत्रैव पुरतस्तस्य पत्युर्हंसस्य पश्यतः।
जातिस्मरा राजपुत्री भूयासं जननान्तरे।
इति संकल्प्य तत्क्षिप्तं शरीरं जलधौ मया।
ततोऽहं सखि जाताद्य तथाभूतेहजन्मनि॥ आदिस्तरंग ४७।

किन्तु अधिकांश कहानियों में प्रायः पूर्वजन्म के विशेष परिचित अथवा आत्मीय व्यक्ति को देखकर ही पूर्वजन्म का स्मरण आता है। टानी द्वारा अनूदित जैन कथाकोश में रासो के समान ही देवपाल की रानी जिनदेव के मन्दिर की ओर जाते समय मार्ग में, सर पर लकड़ी का गट्ठर लिये हुए एक कापालिक को देखकर मूर्छित हो जाती है। उसे पूर्वजन्म का स्मरण हो आता है और संज्ञाविहीन होकर वह बार-बार केवल इतना ही कहती है कि 'तुमने जैन धर्म स्वीकार नहीं किया, तुम कापालिक हो गए और इसीलिए आज भी तुम्हारी यह स्थिति है।' कुछ संज्ञा होने पर राजा ने इस आश्चर्य-

जनक व्यवहार का कारण पूछा। रानी ने बताया कि 'मुझे इस कापालिक को देखकर पूर्वजन्म का स्मरण हो आया है। पूर्वजन्म में मैं एक पुलिन्दि थी और यह मेरा पति था। उस समय मैं जैन धर्म में दीक्षित होकर जिनदेव की दिन में तीन बार पूजा करती थी, किन्तु मेरा पति दीक्षा लेने के पक्ष में न था। परिणामस्वरूप आज मैं तो आपकी महारानी हूँ किन्तु मेरा पति आज दयनीय जीवन बिता रहा है।'

जैन और बौद्ध कथाओं की प्रवृत्ति के अनुरूप इस कहानी में जैन धर्म में दीक्षित होने का महत्त्व बतलाने के लिए इस अभिप्राय का सुन्दर उपयोग किया गया है। यहाँ पूरी कहानी केवल इसी एक घटना को लेकर निर्मित हुई है। इसी प्रकार हेमचन्द्र द्वारा रचित 'परिशिष्ट पर्वन' में एक बन्दर अपनी प्रिया को रानी के रूप में देखकर रोने लगता है—

आरोदीद्वानरो राज्ञोऽर्धासने प्रेक्ष्य ता प्रियाम्।

और रानी को भी उस बन्दर को देखकर अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आता है।

इस प्रकार इस अभिप्राय का प्रयोग विभिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से किया गया है। मुख्य रूप से कथा में गति लाने अथवा उसे दूसरी ओर मोड़ने के लिए ही इसका उपयोग किया गया है। कथा-विस्तार में अत्यन्त सहायक और उपयोगी होने के कारण ही भारतीय साहित्य में रूढ़िगत इसका उपयोग किया गया है।

मुनि का शाप

ऋषि, मुनि, देवी-देवता अथवा किसी अलौकिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति का कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता, इस विश्वास से भारतीय जीवन अत्यन्त प्राचीन काल से प्रभावित और प्रेरित होता रहा है। इस प्रकार के व्यक्ति प्रसन्न होने पर यदि कठिन-से-कठिन और असम्भव कार्य की सिद्धि में सहायक हो सकते हैं तो किसी कारण से अप्रसन्न होने पर बड़ा-से-बड़ा अनिष्ट भी कर सकते हैं। भारतीय ऋषियों-मुनियों की इस दूसरे प्रकार की शक्ति के उदाहरण शाप के रूप में समूचे भारतीय साहित्य में मिलेंगे। सम्भवतः तपःपूत ऋषियों अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यह अन्तःशक्ति, बाह्य शक्तियों को अपेक्षाकृत तुच्छ सिद्ध करने और उनकी श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए ही दी गई है। इस प्रकार की अलौकिक शक्ति रखने वाले किसी व्यक्ति को जान-बूझकर कष्ट पहुँचाने के अपराध में तो शाप मिलता ही है, अज्ञान में कोई अपराध हो जाने पर भी उनके क्रोध का पात्र बनना पड़ता है, और क्रुद्ध

होकर अगर किसी ऋषि ने शाप दे दिया तो उसका घटित होना अवश्यंभावी है। कोई उसे टाल नहीं सकता, स्वयं शाप देने वाला अपने शाप को बिलकुल वापस नहीं ले सकता; हाँ, शाप की अवधि आदि में थोड़ी कमी अवश्य कर सकता है। इसके साथ-ही-साथ शाप का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर समान रूप से पड़ता है, चाहे वह स्वयं शाप देने की शक्ति रखने वाला कोई देवता या ऋषि ही क्यों न हो।

इससे यह स्पष्ट है कि कहानी कहने वालों के लिए यह अभिप्राय कितना उपयोगी हो सकता है। जहाँ कहीं भी उन्हें कहानी को दूसरी दिशा में मोड़ने की आवश्यकता हुई है, इस अभिप्राय से उन्हें सहायता मिली है। नायक-नायिका के सामान्य सुखमय जीवन में जब कभी भी विषमता लाने की आवश्यकता हुई है, उन्हें शाप का पात्र बना दिया गया है। भारतीय पौराणिक और निजन्धरी कहानियाँ इस प्रकार के शाप से भरी पड़ी हैं। कभी तो कोई पात्र जान-बूझकर ऐसा अपराध करता है जिसके कारण उसे शाप मिलता है, और कभी अनजान में ही उससे कोई ऐसी गलती हो जाती है जिसके लिए उसे शाप का फल भुगतना पड़ता है। इस प्रकार इस अभिप्राय के दो रूप हो गए हैं—

१—जान-बूझकर अपराध और शाप;

२—अज्ञान में अपराध और शाप।

जान-बूझकर अपराध करके शाप पाने वाले प्रायः अत्याचारी और धर्मद्रोही व्यक्ति ही होते हैं, इसलिए अभिप्राय के इस रूप का उपयोग मुख्य रूप से ऐसे चरित्रों से सम्बन्धित कहानियों में ही किया जाता है। वहाँ कहानीकार का मुख्य उद्देश्य देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों, मुनियों आदि की उपेक्षा का भयंकर परिणाम दिखाकर पाठक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपदेश देना रहता है। अतः भारतीय पौराणिक कथाओं में ही इस रूप का उपयोग अधिक पाया जाता है, यद्यपि अन्य प्रकार की कहानियों में भी इसका उपयोग कम नहीं हुआ है। रासो में वीसलदेव को भी जान-बूझकर पुष्कर में तपस्या करती हुई वणिक कन्या गौरी का सतीत्व नष्ट करने के कारण राक्षस होने का शाप मिलता है—

पुत्री वणिक सराप दिय भर पुहुकर नर लोइ।
असुर होइ वीसल नृपति वरपलचारी सोइ ॥ स० १, छ० ४६१।

और वे राक्षस हो जाते हैं। इसके बाद ढुंढा राक्षस के रूप में परिवर्तित वीसलदेव के उत्पात से सारा अजमेर नगर उजाड़ हो जाता है और कथा दूसरी

दिशा में मुड़ जाती है। सारंगदेव और ढुंढा राक्षस के युद्ध और सारंगदेव की मृत्यु की कहानी शुरू हो जाती है। आदि पर्व का लगभग आधा भाग ढुंढा राक्षस की ही कहानी में लग जाता है।

किन्तु निजन्धरी कहानियों, नाटिकाओं आदि में अज्ञान में अपराध और शाप, इस अभिप्राय का ही अधिक प्रयोग किया गया है। इसका कारण यह है कि कहानीकार को इसके उपयोग के लिए पात्र-विशेष का बन्धन नहीं होता। अनजान में किसी भी व्यक्ति से अपराध हो सकता है। रासो में पृथ्वीराज से भी अज्ञान में इस प्रकार का अपराध हो जाता है और उसका भयंकर परिणाम उन्हें भोगना पड़ता है। 'आखेटक श्राप प्रस्ताव' नामक तिरसठवें समय में पृथ्वीराज के इसी शाप की कथा कही गई है। राजा, संयोगिता, इच्छिनी आदि रानियों के साथ पानीपत में शिकार खेलने जाते हैं, वहाँ कई दिनों तक खूब आमोद-प्रमोद और शिकार होता है। एक दिन शिकार खेलते समय उन्हें पता चला कि जंगल में एक स्थान पर एक बहुत बड़ा सिंह है। वहाँ पहुँचकर राजा ने गुफा में सिंह के द्वार पर धुआँ किये जाने की आज्ञा दी। राजा को क्या पता था कि उस गुफा में सिंह नहीं है बल्कि बाघाम्बर ओढ़े हुए एक तपस्वी तप कर रहा है। सिंह की खाल के कारण ही सूचना देने वाले को सिंह का भ्रम हो गया था। धुएँ की तीव्रता से तपस्वी की आँखों को बहुत कष्ट हुआ और अन्त में उसने शाप दिया कि जिस व्यक्ति के धुआँ कराने से मेरे नेत्रों को असह्य पीड़ा हुई, कुछ दिन बाद उसका शत्रु उसकी दोनों आँखें निकालेगा और मेरे नेत्रों को जितना कष्ट इस समय हो रहा है उसका सौगुना कष्ट उस व्यक्ति को होगा।

> जिहि मो दिग्ग दुष्ष ए। निरा अपराध आय अब
> ता जुग लोचन जोतु अयन जुग बीतत कट्ढय।
> जितिक पीर हम भोग्यैं भूमिलोक अवलीक इहि
> सतगुनी विरधता होइ चष चल्यो चाइ मुनि ईस कहि ॥ छन्द १६२।

दशरथ और पाण्डु को भी इसी प्रकार शाप मिला था। पृथ्वीराज के पुरोहित गुरुराम ने राजा को अधिक शिकार खेलने से मना करते हुए कहा भी था कि मृगया का व्यसन अच्छा नहीं, दशरथ और पाण्डु दोनों को मृगया-प्रेम के कारण ही शाप सिर पर लेना पड़ा था।

पाण्डु ने शिकार खेलते समय आनन्दकेलि करते हुए एक मृग और मृगी को बाण से मारा था, किन्तु वास्तव में वे मृग और मृगी ऋषि और ऋषि-पत्नी थे जो मृग रूप में विहार कर रहे थे। पाण्डु को क्या पता था कि

ये ऋषि और ऋषि-पत्नी हैं। ऋषि ने राजा को शाप दिया कि 'जिस अवस्था में मेरी मृत्यु हो रही है, अपनी पत्नी के साथ सहवास करते हुए उसी अवस्था में तुम्हारी भी मृत्यु होगी।' इसी से मिलते-जुलते शाप की कहानी दशकुमार-चरित में कही गई है। शाम्ब नामक कोई राजा एक बार अपनी प्रियतमा के साथ जल-विहार करने एक सरोवर पर गये। उस सरोवर में बहुत से लाल कमल खिले हुए थे और उनके बीच एक हंस सोया हुआ था। राजा ने विनोद में हंस को पकड़कर, कमलनाल के सूत से उसके पैर बाँध दिए। वास्तविक बात यह थी कि हंस रूप में एक ऋषि वहाँ एकान्त-सेवन कर रहे थे। ऋषि ने राजा को शाप दिया कि 'जाओ तुम्हारी स्त्री तुमसे अलग हो जायगी।'

पाण्डु वाली कहानी कथासरित्सागर में दी हुई है। कथासरित्सागर में विद्याधर चित्रांगद को इसी प्रकार शाप मिलता है। अपनी पुत्री मनोवती के साथ आकाश-मार्ग से जाते समय चित्रांगद के हाथ से एक माला गिर जाती है। संयोग से वह माला गंगा में स्नान करते हुए नारद मुनि की पीठ पर गिरती है। इस अपमान से क्रुद्ध होकर महर्षि शाप देते हैं कि 'ओ दुष्ट व्यक्ति, सिंह होकर हिमालय में अपनी पुत्री को पीठ पर तब तक ढोते रहो जब तक कि तुम्हारी पुत्री का विवाह किसी मनुष्य से नहीं हो जाता और तुम उस विवाह को देख नहीं लेते।'

इस अभिप्राय का सबसे सुन्दर उपयोग कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तल' में किया है। अज्ञान में अपराध के कारण ही शकुन्तला को दुर्वासा का शाप मिलता है और वहीं से कहानी की दिशा बदल जाती है। 'महाभारत' के शकुन्तलोपाख्यान में दुर्वासा के शाप की घटना नहीं है, वहाँ दुष्यन्त का चरित्र धीरोदात्त नायक का चरित्र न होकर एक शठ नायक का चरित्र है। दुष्यन्त पहचानते हुए भी शकुन्तला को नहीं पहचानते, किन्तु यहाँ इस शाप की घटना के कारण दुष्यन्त का चरित्र निष्कलंक हो गया है; वे शकुन्तला को दुर्वासा के शाप के कारण ही नहीं पहचान पाते। साथ-ही-साथ इस घटना से कथा में सौन्दर्य और गति आ गई है। कवि को शकुन्तला और दुष्यन्त की मार्मिक वियोग दशा का चित्रण करने का अवसर मिल गया है।

रासो में भी शाप की घटना केवल पृथ्वीराज के चरित्र का उत्कर्ष दिखाने के लिए लाई गई है। शहाबुद्दीन गोरी द्वारा पृथ्वीराज के पराजित होने के पूर्व ही इस घटना का आयोजन इसीलिए किया गया है कि पाठक यह पूर्व धारणा बनाकर चले कि पृथ्वीराज की पराजय निश्चित है। मुनि के शायद

शाप के कारण ही पृथ्वीराज पराजित होता है, मुहम्मद गोरी की शक्ति के कारण नहीं। इस प्रकार उसका वीरत्व अन्त तक खण्डित नहीं होता; वह पाठक की दृष्टि में अन्त तक उतना ही वीर और महान् बना रहता है। स्पष्ट ही पृथ्वीराज की वीरता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए ही इस अभिप्राय का यहाँ उपयोग किया गया है।

जैसा ऊपर कहा गया है इस अभिप्राय की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इस प्रकार का अपराध किसी भी व्यक्ति से कहीं भी हो सकता है, क्योंकि अदृश्य शक्तियाँ किस रूप में कहाँ पर हैं यह समझ पाना मनुष्य के सामर्थ्य के बाहर की बात है। पाण्डु और शाम्ब के उदाहरण से ऋषि हरिण और हंस रूप में विहार करते हैं और दोनों व्यक्ति उन्हें हरिण और हंस समझकर ही बाण मारते या पकड़ते हैं। अगर वे उन्हें ऋषि समझते तो सम्भवतः कभी भी ऐसा न करते। अपनी व्यापकता और उपयोगिता के कारण यह अभिप्राय यूरोप की कुछ कहानियों में भी प्रयुक्त हुआ है। पेंजर ने 'कथासरित्सागर' की पाद टिप्पणी में इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कुछ कहानियों के उदाहरण दिये हैं।[१] हैलीडे ने इस अभिप्राय पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है कि 'अज्ञान में अपराध' (अनइण्टेन्शनल इन्जरी) का अभिप्राय विशेष रूप से भारत और अरब की कहानियों में बहुत अधिक प्रचलित है और इसका मूल आधार मनुष्य का अदृश्य शक्तियों में विश्वास है जो भारत तक ही सीमित नहीं है। पेंजर के इस मत को कि भारत से ही दूसरे देशों में यह अभिप्राय गया है वे निर्विवाद रूप मानने को तैयार नहीं, क्योंकि नायक द्वारा अज्ञान में हुए अपराध के कारण अलौकिक शक्ति रखने वाले किसी दैवी या लौकिक व्यक्ति के शाप से कथा में अनेक घटनाओं के समावेश का अवसर मिल सकता है। यह विचार इस प्रकार की शक्ति की सम्भावना में विश्वास करने वाले किसी भी व्यक्ति को सूझ सकता है।

---

१. Clearly the idea that a series of advertures may be percipated by the curse of a spirit or person endowed with magical powers, who is unintentionally injured by the hero, is one which might independently occur to any people who believe in the proximity of such powerful or holy persons.

Halliday—Foreword to the Eighth Volume of 'Ocean of Story'; page 12.

अतिप्राकृत दृश्य से लक्ष्मी-प्राप्ति का शकुन

'भूमि स्वप्न प्रस्ताव' नामक सत्रहवें समय में पृथ्वीराज आखेट से वापस आते समय मार्ग में सर्प के फन पर एक देवी (खंजन पक्षी) को नृत्य करते हुए देखता है—

सम्भलि पिथ्थ कुमार व्योम दिष्यौ सप सारिय
अद्धौ बांबी मध्य अद्ध ऊँचौ अधिकारिय ।
ता फनि ऊपर मनिप्रमान देवि चावद्धिसि नंचै
दिष्यो इछ मन मंडि राज दिसि सगुनह संचै ।।३६।।

राजा अपने ज्योतिषी महिर से इसका फल पूछता है । ज्योतिषी महिर ने इसका फल यह बतलाया कि राजा को अनायास ही भूमि और लक्ष्मी की प्राप्ति होगी, शत्रुओं की पराजय और कीर्ति का विस्तार होगा—

आवै भूमि रु लच्छि पेषि माता इह सारी
दल जित्ते षुरसान कित्ति जग ज्यों विस्तारी ।।३७।।

सर्प के फन पर खंजन का नृत्य एक शकुन सम्बन्धी अभिप्राय है, रासोकार की यह अपनी निजी कल्पना नहीं है । राजतरंगिणी में भी यह अभिप्राय आया है । राजतरंगिणी के अनुसार मातृगुप्त काश्मीर के राजा होने के पूर्व उज्जयनी के तत्कालीन शासक विक्रमादित्य (या हर्ष) के दरबार के कवि थे । मातृगुप्त की राजभक्ति से प्रसन्न होकर विक्रमादित्य ने उन्हें एक पत्र देकर काश्मीर भेजा । मातृगुप्त से कहा गया था कि वे उस पत्र को न देखें । मार्ग में कवि ने एक सर्प के फन पर खंजन पक्षी को नृत्य करते देखा । तत्पश्चात् स्वप्न में अपने को महल पर चढ़ते और समुद्र पार करते देखा—

अपश्यत्स फणाकोटौ खंजरीट महेः पथे
स्वप्ने प्रासादमारुह्य स्वं चोल्लंघित सागरम् ।। ३।२२१ ।।

इस शकुन से शास्त्रज्ञ मातृगुप्त को विश्वास हो गया कि निश्चित रूप से इस पत्र में लिखे आदेश से मेरा कोई-न-कोई कल्याण होने वाला है ।

अचिन्तयच्च शास्त्रज्ञो निमित्तैः शुभशंसिभिः
एतैर्भूभर्तुरादेशो ध्रुवं मे स्याच्छुभावहः ।। ३।२२२ ।।

उस पत्र में काश्मीर के मन्त्रियों को विक्रमादित्य ने आदेश दिया था कि पत्र-वाहक मातृगुप्त को काश्मीर का राजा बना दिया जाय ।

रासो में भी इस शकुन का फल भूमि अर्थात् राज्य और धन दोनों की अनायास प्राप्ति कहा गया है । मातृगुप्त को बिना युद्ध आदि के अनायास ही राज्य-प्राप्ति हो जाती है । खट्टूवन में पृथ्वीराज को भी अपार धनराशि और

बाद में दिल्ली राज्य की प्राप्ति हो जाती है। जिस प्रकार 'राजतरंगिणी' में मातृगुप्त इस शकुन के बाद स्वप्न देखता है उसी प्रकार रासो में भी पृथ्वीराज के पास स्वप्न में भू-देवी आती हैं और पृथ्वीराज को खट्टूवन में अगणित धन मिलने की सूचना देती हैं—

> चढ़ि करि सँभरि वार चलि गेह सपन्नौ जाइ।
> अंधारी दारुन निसा भू सुपनन्तर आइ ॥ १७।७१ ॥
>
> × × ×
>
> कहै भूमि प्रथिराज सो स्तुति दै करि मन सुद्धि।
> बसै द्रव्य अगनित सगुन षट्टपुर वन मद्धि ॥ १७।७७ ॥

यहाँ रासोकार ने अत्यन्त प्रचलित लोक-अभिप्राय (फोक मोटिव) का सहारा लिया है। स्वप्न में किसी देवता द्वारा धन-प्राप्ति की सूचना सम्बन्धी अनेक कहानियाँ विभिन्न कथा-संग्रहों में मिल जायँगी। उदाहरण के लिए 'कथा सरित्सागर' में सिंह पराक्रम को स्वप्न में विन्ध्यवासिनी दुर्गा बनारस में न्यग्रोध वृक्ष के नीचे अतुल धनराशि की सूचना देती हैं—

> सा तं स्वप्ने निराहारस्थितं देवी समादिशत।
> उत्तिष्ठ पुत्र तामेव गच्छ वाराणसी पुरीम् ॥
> तत्र सर्वमहानेको योऽस्ति न्यग्रोध पादपः।
> तन्मूला खन्यमानात्वं स्वैरं निधिमवाप्स्यसि ॥२३।३६॥

सर्प, देव, यक्ष आदि द्वारा गड़े धन की रक्षा

किन्तु पृथ्वीराज को खट्टूवन की सम्पत्ति सर्प और यक्ष द्वारा रक्षित होने के कारण सरलता से नहीं प्राप्त हो जाती। धन का सर्प, यक्ष आदि द्वारा रक्षित होना भी एक प्रचलित लोक-विश्वास है। साधारणतया लोगों में यह विश्वास पाया जाता है कि धन के प्रति अधिक ममत्व रखने वाले व्यक्ति मृत्यु के बाद भी किसी-न-किसी रूप में (प्रायः सर्प या देव होकर) अपने धन की रक्षा करते हैं। खट्टूवन में भी उस धन की रक्षा अजयपाल नामक एक राजा जन्मान्तर में सर्प रूप में करता है। हरिभद्र कृत 'समराइच्च कहा' में बालचन्द धन-लोभ के कारण ही मृत्यु के बाद सर्प होकर गड़े धन की रक्षा करता है। लोक-कथाओं में प्रायः सर्प गड़े धन की रक्षा करता है। क्रुक ने अपनी पुस्तक 'पापुलर रिलीजन एण्ड फोक लोर आव इण्डिया' (२, १३३) पुस्तक में राजपूताना के पीपरनगर और सम्भू झील के बारे में एक प्रचलित कहानी दी है। सर्प अतुल धनराशि का स्वामी होता है और

उसकी सहायता से किसी व्यक्ति को धन प्राप्त हो सकता है, यही विश्वास उस कहानी में व्यक्त हुआ है। पीपा नामक व्यक्ति को सम्पू झील के पास रहने वाले एक सर्प से नित्य दो स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। पीपा के एक लड़के को यह रहस्य मालूम होता है और वह उस सर्प को मारकर सारा खजाना ही प्राप्त कर लेना चाहता है। संयोग से सर्प बच जाता है और दूसरे दिन उसके काटने से लड़के की मृत्यु हो जाती है। पीपा सर्प को दूध पिलाकर प्रसन्न करता है। फलस्वरूप उसे वह धनराशि प्राप्त हो जाती है।

इसीसे मिलती-जुलती कहानी एलविन वेरियर ने 'मिथ्स आफ मिडल इण्डिया' में दी है। खट्टू वन में खजाने का पत्थर तोड़ते ही एक बड़ा भारी सर्प निकलता है। कवि चन्द मन्त्रबल से उसे वश में कर लेता है। बारह हाथ और खोदने पर एक देव प्रकट होकर अनेक प्रकार की माया द्वारा युद्ध करता है; अन्त में उसे भी चन्द देवी की सहायता से पराभूत करता है। इतनी कठिनाई के बाद धन प्राप्त होता है।

वरदानादि के द्वारा निर्धन व्यक्ति का धनी हो जाना

'अतिप्राकृत दृश्य द्वारा लक्ष्मी प्राप्ति' के समान ही 'वरदानादि' द्वारा अथवा पशु-पक्षियों द्वारा धनप्राप्ति-सम्बन्धी एक अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है। प्रायः कथाओं में निर्धन व्यक्ति अलौकिक ढंग से धन प्राप्त करते हैं। कभी-कभी सम्पन्न व्यक्तियों, जैसे राजा वणिक् आदि को भी इस प्रकार सुवर्णादि की प्राप्ति होती है। चूंकि अधिकतर कथाओं में निर्धन व्यक्ति ही चमत्कारिक ढंग से धनी होते पाये जाते हैं, इसलिए विद्वानों ने इस 'अभिप्राय' को 'निर्धन व्यक्ति का चमत्कारिक ढंग से धनी किया जाना' (एनरिचिंग पुअरमैन्स मोटिफ), इस नाम से ही अभिहित किया है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के पूर्वज माणिकराय को सँभरा देव से यह वरदान मिला था कि वह अश्वारूढ़ होकर जितनी भूमि की परिक्रमा कर डालेंगे उतनी भूमि चाँदी की हो जायगी।

> चढ़ि पवंग पहुमि षरिहै जितक्क।
> अनषूट रजत ह्वैहै तितक्क॥ स० ५७। छं २१२॥

किन्तु साथ-ही-साथ पीछे देखने का निषेध भी था। माणिकराव जी बारह कोस तक तो बिना पीछे देखे चले गए, किन्तु दैववशात् इसके बाद ही उन्होंने पीछे देख लिया। पीछे देखते ही वह सब भूमि चाँदी के स्थान पर ऊसर या नमक हो गई।

द्वादसइ कोस ऊतर क्रमन्त। भवतव्य कौन मेटै निमन्त ॥
मन आनि भ्रन्ति फिरि देषि पच्छ।
ह्वै गयो लवन गारि सर प्रत्यच्छ ॥ वही, छं० २१३ ॥

इस कहानी में 'परिक्रमा की हुई भूमि का चाँदी का हो जाना तथा पीछे देखने का निषेध और उस निषेध का उल्लंघन करने के कारण हानि' दो मुख्य घटनाएँ हैं। ये दोनों ही भारतीय कहानियों के अत्यन्त प्रचलित अभि-प्राय हैं।

फलादि द्वारा सन्तानोत्पत्ति

सन्तान-हीनता की चर्चा कथाओं में बहुत अधिक आती है। यान्त्रिक ढंग से कहानीकारों ने इसका उपयोग किया है। प्रायः कहानियों में सन्तान-सुख से वंचित व्यक्ति तपस्या, किसी देवी-देवता के वरदान, तन्त्र-मन्त्र अथवा ऋषियों-मुनियों आदि द्वारा दिये हुए फल आदि से सन्तान प्राप्त करते हैं। रासो में भी अनंगपाल की कन्या को ढुंढा द्वारा एक फल मिलता है जिसे वह तेरह भागों में विभाजित करके अपनी सहेलियों को दे देती है, फलस्वरूप तेरह सामन्तों की एक साथ उत्पत्ति होती है।

ढुंढा नाम दानव उतंग दियो फल अंब विसालं।
बंदि लीन नृपराज आय फिर गेह सुबालं ॥
सत्त भाग छह अग्ग बंटि दिय अत्त समानं।
तिनह सूर सामंत किति रष्षन चहुआनं ॥
रजमेल चन्द फल अमिय प्रथु सबर साहि भोषन सुगहु।
इकदस समंत पंचह समै भए थान पंचम सु पहु ॥ १।३।७॥

ऋषियों-मुनियों से तो प्रत्यक्ष रूप से कोई-न-कोई फल मिलता है, किन्तु देवी-देवता प्रायः 'फल-प्राप्ति का स्वप्न' दिखलाते हैं। देवताओं में भी प्रायः शिव या गौरी की पुत्र-प्राप्ति के लिए विशेष आराधना की जाती है। भविष्य-सूचक स्वप्नों में फल का स्वप्न पुत्र-प्राप्ति का सूचक माना जाता है। 'दशकुमार चरित' में मगध की पटरानी महादेवी वसुमती फल-प्राप्ति का स्वप्न देखने के बाद ही गर्भवती हो जाती है। दण्डी ने आगे कह भी दिया है कि सन्तान की एक प्रकार की जो लालसा स्त्रियों में होती है वह फल ही तो है, अतः फल के स्वप्न द्वारा स्त्री को उसकी पूर्व सूचना मिल जानी स्वाभाविक है। 'फल-प्राप्ति का स्वप्न' अथवा 'ऋषि-मुनि आदि द्वारा फल-प्राप्ति' से भी आगे बढ़कर कवियों ने देवताओं द्वारा स्वप्न में वास्तव में फल-प्राप्ति की

भी कल्पना की है। 'कथासरित्सागर' में वासवदत्ता और परित्यागसेन को स्वप्न में अलौकिक व्यक्तियों द्वारा फल मिलता है।

कतिपय दिवसापगमे तस्याः स्वप्ने जटाधरः पुरुषः
कोऽप्यथ देव्या वासवदत्तायाः फलमुपेत्य ददौ ॥ २२।१४७ ॥

वासवदत्ता को शिव द्वारा और परित्यागसेन को गौरी द्वारा फल मिलता है। उन फलों के खाने के बाद दोनों को पुत्र उत्पन्न होते हैं।

ततः सा तं तपस्तुष्टा स्वप्ने दत्वा फलद्वयम्।
दिव्यं समादिशत्साक्षाद्भवानी भक्तवत्सला ॥
उत्तिष्ठ देहि दारेभ्यो भक्ष्यमेतत्फलद्वयम्।
ततो राजन्प्रवीरो तें जनिष्येते सुतावुभौ ॥ ४२।५७।५८॥

महाभारत (२, १६, २९) में भी फल द्वारा सन्तानोत्पत्ति की चर्चा आई है। फलों में भी आम के फल से सन्तान-प्राप्ति की ही बात अधिकांश स्थानों पर कही गई है। महाभारत (२, १६, २९), डे द्वारा संकलित बंगाल की लोक-कथाएँ[1], स्टोक्स की पुस्तक 'इण्डियन फेयरी टेल्स'[2], फ्रीयर की 'ओल्ड डेकन डेज' (पृ० २४४) आदि में आम के फल से सन्तान-प्राप्ति होती है। रासो में भी आम का ही फल दिया गया है। कुछ कहानियों में लीची का फल भी आया है।

फलों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के मिश्रणों द्वारा भी सन्तान-प्राप्ति की चर्चा लोक-कथाओं में प्रायः मिलती है। राल्सटन द्वारा संकलित 'तिबतन टेल्स' (पृ० २१) में इन्द्र एक प्रकार की औषधि भेजते हैं जिससे निस्सन्तान राजा को पुत्र-लाभ होता है। रामचरितमानस में दशरथ को अग्नि द्वारा दिये गए चरु से पुत्र-प्राप्ति होती है।

इस प्रकार दिव्य व्यक्तियों द्वारा प्राप्त फलों से सन्तान-प्राप्ति के विचार का सम्बन्ध सम्भवतः चिकित्सा-शास्त्र है। सम्भव है सतानोत्पत्ति के लिए फल के साथ कोई औषधि दी जाती रही हो। 'कथासरित्सागर' में जंगली बकरे के पके हुए मांस के साथ एक प्रकार का चूर्ण मिलाकर देने से वीरभुज की सौ रानियों को सन्तान-प्राप्ति होती है। इसके साथ-ही-साथ देवी-देवताओं, ऋषियों-मुनियों आदि अलौकिक शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा भी यह इच्छा पूर्ण हो सकती है, यह धारणा भारतीय साहित्य के प्रारम्भ से ही मिलती है। महाभारत में अधिकांश राजाओं को इसी प्रकार सन्तान-प्राप्ति

१. फोक टेल्स आफ बंगाल, पृ० ११७।

२. स्टोक्स : इण्डियन फेयरी टेल्स, पृ० ६४।

होती है। विभिन्न देवी-देवताओं, तपस्वियों आदि की कृपा से सन्तान-प्राप्ति की कहानियाँ विक्रम चरित,[1] परिशिष्ट पर्वन (२, ५१), जातक (४५८), दश-कुमार चरित (१ पृ० ३, २ पृ० २३), समरादित्य संक्षेप (४, १), राल्सटन के 'तिबतन टेल्स' (पृ० ५१, २४६) आदि अनेक पुस्तकों और कथा-संग्रहों में मिलती हैं। देवी-देवताओं की इस शक्ति के साथ औषधि-मिश्रित फल को मिला देने के कारण बाद में इस प्रकार की अलौकिक शक्ति रखने वाले व्यक्तियों द्वारा भी फल-प्राप्ति की कल्पना की गई और स्वप्न में (कभी-कभी प्रत्यक्ष भी) विभिन्न देवताओं द्वारा निस्सन्तान व्यक्तियों को फल भी मिलने लगा। मन्त्र द्वारा भी सन्तान-प्राप्ति की कहानियाँ बहुत मिलती हैं। कथा-सरित्सागर में कौशाम्बी नरेश शतानीक की रानी को मन्त्र द्वारा पुत्र-प्राप्ति होती है।

सोऽस्य पुत्रार्थिनो राज्ञः कौशाम्बीमेत्य साधितम्।
मन्त्रपूतम् चरुम् राज्ञीं प्राशयन्मुनि सत्तमः
ततस्यस्य सुतो जज्ञे सहस्रानीक संज्ञकः।

कामशास्त्र सम्बन्धी साहित्य में इस प्रकार के मन्त्रपूत औषधियों, फलों और तन्त्रों की सूची दी हुई है।[2]

अतिप्राकृत जन्म

दैवी शक्तियों की सहायता और उनसे प्राप्त अलौकिक गुण वाले फलों आदि से सन्तानोत्पत्ति के अलावा चमत्कारिक जन्म सम्बन्धी भी अनेक कहानियाँ हिन्दू कथा-साहित्य में मिलती हैं। कभी तो किसी स्त्री को मांस खण्ड अथवा हाड़ का टुकड़ा पैदा होता है और उससे बाद में सुन्दर पुत्र अथवा पुत्री निकलती है तो कभी सरकण्डे अथवा कलस से बालक उत्पन्न होता है। रासो में कहा गया है कि पृथ्वीराज के पूर्वज माणिक राव की रानी को गर्भ से बालक के स्थान पर एक अंडजाकार अस्थिखण्ड उत्पन्न हुआ।

तक्षक पुर चाहुल ग्रह पुत्तिय। मानिक राव पारिनि गज गत्तिय॥
तिहि रानी पूरब क्रम गत्तिय। इंडज आकृति हड्ड प्रसूतिय॥

स. ५७, छ. १६६

राजा ने उस अस्थिखण्ड को जंगल में फेंक देने की आज्ञा दी। रानी ने यह स्वीकार नहीं किया। राजा ने उन्हें महल से निकाल दिया। उस अस्थि-

१. लाइफ एण्ड स्टोरीज ऑफ जैन सेवियर पार्श्वनाथ—ब्लूमफील्ड, पृ० २०३।
२. वही, पृ० २०३।

खण्ड का किसी राजा की पुत्री से विवाह हो गया।

पानिग्रहन कर लियौ कुंअर हड्डा कमधज्जनि
दसहू दिसि उड़ि वत्त सुने अचरज पति गज्जनि ॥ छ. १६६ ॥

जिस समय गजनीपति ने माणिक राव पर आक्रमण किया उस समय वह अस्थिखण्ड फट गया और उससे साक्षात् नरसिंह के समान तेजोदीप्त एक सुन्दर राजकुमार निकला।

वज्यो सिन्धु औ राग सारे करारं। तवे हड्ड फट्यो प्रगट्यो कुमारं
प्रचण्डं भुजा दण्ड उत्तंग छत्ती। नरं नारसिंघं अवतारमत्ती ॥
सं० ५७, छ० २०४, २०५

महाभारत इस प्रकार के अतिप्राकृत जन्म से भरा पड़ा है। गांधारी दो वर्ष तक गर्भ धारण किये रहती है; कोई सन्तान ही नहीं उत्पन्न होती। अन्त में दुखी होकर वह अपने उदर पर आघात करती है जिससे लोहे की गेंद के समान एक मांस का टुकड़ा भूमि पर गिर पड़ता है।

सोदरंघातयामास गान्धारी दुःखमूर्छिता
ततो जज्ञे मांसपेशी लोहाष्ठी लैव संहता ॥ आदि पूर्व, ११५।११, १२ ॥

और उसी मांसपेशी से बाद में व्यास की कृपा से धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की उत्पत्ति होती है। महाभारत में ही द्रोणाचार्य का जन्म यज्ञ के कलश से और कृपाचार्य का जन्म सरकण्डे की लकड़ी से होना वर्णित है।

आचार्य्यः कलशाज्जातो द्रोणः शस्त्र भृतांवरः
गौतमस्यान्ववाये च शरस्तम्वाच्च गौतमः ॥ आदि पर्व, १३८, १५।

कृप और कृपी के जन्म की कहानी यह है कि जानपदी नाम्नी देवबाला को एकवसना देखकर गौतम ऋषि के मन में विकार उत्पन्न हो गया। सरकण्डे की लकड़ी पर रेतस्खलन हुआ और वह लकड़ी दो भागों में विभक्त हो गई। उससे एक कन्या और एक पुत्र का जन्म हुआ। मृगया के लिए भ्रमण करते हुए शान्तनु ने उन्हें पाया और उनका नाम कृप और कृपी रखा। एक दूसरे स्थान पर भार्गव वंश की एक ब्राह्मणी की जांघ से आक्रमणकारी क्षत्रियों का नाश करने के लिए मध्यकालीन सूर्य के समान देदीप्यमान एक बालक जन्म लेता है।

अथ गर्भः सभित्वोरु ब्राह्मण्यानिर्ज्जगामह।
मुष्णान्दृष्टीः क्षत्रियाणां मध्याह्न इव भास्करः। (आदि पर्व, १७६, २४)

महाभारत के इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि अतिप्राकृत जन्म की धारणा भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। रासोकार ने अपनी निजी कल्पना

इसमें नहीं लगाई है। मुख्य रूप से इस प्रकार की धारणा लोक-विश्वास पर आधारित है और इसीलिए लोक-कथाओं में इस प्रकार की अतिप्राकृत जन्म सम्बन्धी कहानियाँ बहुत अधिक मिलती हैं। इण्डियन एंटीक्वैरी में एफ० ए० स्टील ने पंजाब में प्रचलित कुछ कहानियाँ प्रकाशित की हैं। उनमें से एक कहानी (जिल्द १०, पृ० १८१) में एक हाथ, एक पैर और एक आँख वाले आधे लड़के का जन्म होता है। विशेषता यह है कि शरीर के आधे अंगों के न रहने पर भी वह बहुत पराक्रमी और चतुर है। फ्रीयर के 'ओल्ड डेकन डेज़' (पृ० १४०) और स्टोक्स के 'इंडियन फेयरी टेल्स' (पृ० ७४) में इस प्रकार के अतिप्राकृत जन्म की कहानियाँ दी हुई हैं। एलविन वेरियर की पुस्तक 'मिथ्स आव मिडल इंडिया' में इस अभिप्राय के विभिन्न रूप मिलते हैं। वेरियर ने 'जन्म-सम्बन्धी विभिन्न धारणाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कहानियों की सूची दी है। कुछ कहानियों में स्त्रियों के गर्भ से जानवरों की उत्पत्ति होती है तो कुछ में मांस खण्ड, हाड़ के टुकड़े या राक्षस की। कुछ कहानियों में तो किसी व्यक्ति की छाया-मात्र से स्त्रियों के गर्भ-धारण तक की बात कही गई है। वस्तुतः अतिप्राकृत जन्म की धारणा मानव-सभ्यता के प्रारम्भिक काल की देन है और वह आज भी लोक-विश्वास के रूप में लोक-जीवन के बीच जीवन्त सत्य की तरह जी रही है।

भविष्यसूचक स्वप्न

स्वप्न भविष्य की सूचना देते हैं यह विश्वास किसी-न-किसी रूप में संसार-भर की जातियों में पाया जाता है। अपने इतिहास और पुराण के आदिमकाल से मनुष्य स्वप्न देखता और उनके बारे में कहता आ रहा है। उसी काल से स्वप्नों का अभिप्राय बताने वाले भी विद्यमान रहे हैं। स्वप्न सदा से मनुष्य की गहरी अभिरुचि का विषय रहा है समस्त मानव-जाति के आदिम साहित्य में इसकी चर्चा मिलती है।[1] भारतवर्ष में तो अत्यन्त प्राचीन काल से यह माना जाता रहा है कि स्वप्न द्वारा सदैव भविष्य की सूचना मिलती है। यही कारण है कि भारतीय कथाएँ भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना देनेवाले विविध प्रकार के स्वप्नों से भरी हुई हैं। 'कथासरित् सागर' में स्वप्न तीन प्रकार के बताये गए हैं—अन्यार्थ, यथार्थ और अपार्थ। जिस स्वप्न के फल का तुरन्त पता चल जाय उसे अन्यार्थ तथा जिसमें देवता द्वारा कोई आदेश दिया जाय उसे यथार्थ कहते हैं। गाढ़ अनुभव और चिन्ता

१. स्वप्न दर्शन, ले० राजाराम शास्त्री, भूमिका पृ० क।

आदि के कारण देखा हुआ स्वप्न अपार्थ कहा गया है।

स्वप्नश्चानेकधान्यार्थो यथार्थोऽपार्थ एव च।
यः सद्यः सूचयेत्यर्थमन्यार्थः सोऽभिधीयते ॥
प्रसन्नदेवतादेशरूपः स्वप्नो यथार्थकः।
गाढ़ानुभवचिन्तादिकृतमाहुरपार्थकम् ॥ ४६।१४७,१४८॥

साथ-ही-साथ स्वप्न-फल का शीघ्र या देर से प्राप्त होना काल-विशेष पर निर्भर करता है। यह विश्वास किया जाता है कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में देखा हुआ स्वप्न शीघ्र फल देने वाला होता है।

चिरशीघ्र फलत्वं च तस्य काल विशेषतः।
एष रात्र्यन्त दृष्टस्तु स्वप्नः शीघ्र फलप्रदः ॥ कथा सरित्सागर
४६।१५१॥

'भविष्य-सूचक स्वप्न' के 'अभिप्राय' के अन्तर्गत अन्यार्थ और यथार्थ दो प्रकार के स्वप्न ही आते हैं। कथाओं में भविष्य-सूचक स्वप्नों का उपयोग अलंकृति और चमत्कार उत्पन्न करने के साथ-ही-साथ कथा को गति देने और उसे आगे बढ़ाने के लिए भी किया जाता है। किन्तु प्रतीकात्मक स्वप्नों का उपयोग कथाओं में प्रायः अलंकृति-मात्र के लिए ही किया गया है। यथार्थ स्वप्न, अर्थात् ऐसे स्वप्न जिनमें अलौकिक व्यक्ति द्वारा किसी बात की सूचना मिलती है, प्रायः कथा को आगे बढ़ाने या उसे दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में इन दोनों प्रकार के स्वप्नों का उपयोग किया गया है।

प्रतीकात्मक स्वप्न

'दिल्लीदान प्रस्ताव' नामक अट्ठारहवें समय में दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को सौंपकर राजा अनंगपाल के वैराग्य ग्रहण करने का कारण एक विचित्र स्वप्न बतलाया गया है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में राजा ने स्वप्न में देखा कि जमुना के किनारे एक सिंह बैठा हुआ है। उसी समय नदी के उस पार से एक दूसरा सिंह आकर उसके पास बैठ गया। दोनों सिंह स्नेह-क्रीड़ा करने लगे। जगजोति नामक ज्योतिषी ने राजा को इसका फल बतलाते हुए कहा कि 'जमुना के इस किनारे पर बैठे हुए सिंह तो स्वयं आप हैं और उस पार से आया हुआ सिंह आपका दौहित्र पृथ्वीराज है। अब यहाँ चौहानवंश का राज्य स्थापित होगा। अतः उचित यह है कि आप स्वयं यह राज्य पृथ्वीराज को सौंपकर बद्रिकाश्रम में तप करने चले जायँ' (छन्द १७-१९)। राजा ने

स्वप्न-फल की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को सौंप दिया और स्वयं तप करने चले गए।

सिंह का स्वप्न राजत्व का प्रतीक माना जाता है। स्वप्न-सम्बन्धी इस साधारण अभिप्राय (माइनर मोटिफ)का उपयोग जैन और बौद्ध कहानीकारों ने बहुत अधिक किया है। जैन और बौद्ध कथा-संग्रहों में इस अभिप्राय का उपयोग बिलकुल यान्त्रिक ढंग से किया गया है। प्रायः चक्रवर्ती राजाओं के गर्भ में आने के पूर्व उनकी माताएँ सिंह का स्वप्न देखती हैं। उदाहरण के लिए परिशिष्ट पर्वन में सिंह का स्वप्न देखने के बाद जम्बू धारिणी के गर्भ में आता है।

सुतजन्म यदप्रच्छि तत्स्वप्ने सिंहमंक्षम्।
भद्रे द्रक्ष्यस्यथो कुक्षौ सुतसिंहं धरिष्यसि ॥ २,५२ ॥

× × ×

अन्यदा धारिणी स्वप्ने श्वेतसिंहं न्यभालयत् ॥ २,५७ ॥

इसी प्रकार 'पार्श्वनाथ चरित' (२,४४), 'समरादित्यचरित' (२,८) में स्वप्न में सिंह-दर्शन के बाद रानियाँ गर्भ धारण करती हैं। वैराग्य के कारण रूप में भी स्वप्न-सम्बन्धी अभिप्राय का कहानियों में प्रायः उपयोग किया गया है। किन्तु इस प्रकार की कहानियों में संसार से विरक्त होने वाला व्यक्ति प्रायः स्वप्न में कोई करुण दृश्य देखकर ही विरागी होता है।[1]

इसी प्रकार शहाबुद्दीन द्वारा बन्दी बनाये जाने के पूर्व पृथ्वीराज ने एक दिन स्वप्न में देखा कि वह सभी रानियों के बीच में बैठा हुआ है और वे रानियाँ आपस में झगड़ रही हैं। इसी बीच आकाश से कुछ दानव उतरकर उन्हें अपनी ओर खींचते हैं। वे रक्षा के लिए चिल्लाती हैं और पृथ्वीराज उन्हें बचाने का प्रयत्न भी करता है, किन्तु बचा नहीं पाता। इतने में उसकी आँख खुल जाती है (स० ६६, छं० २४२)।

स्वप्न की यह घटना, शहाबुद्दीन और उसके सैनिक रूपी दानवों द्वारा पृथ्वीराज के बन्दी किये जाने पर, रानियों की दुर्दशा का प्रतीक रूप में पूर्व सूचना देती है।

'कथा सरित्सागर' में इसी प्रकार नरवाहन दत्त स्वप्न में अपने पिता को भयंकर काली स्त्री द्वारा घसीटकर दक्षिण दिशा में ले जाए जाते देखता है।

स्वप्ने निशावसाने स्वं पितरं कृष्णया स्त्रिया।
आकृष्य दक्षिणामाशां नीयमानमवैक्षत ॥ १११ । ५१ ॥

---

१. देखिए, जर्नल ऑव अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी, वाल्यूम ६७, पृ० ६ में एम० वी० एवेन्यू की पाद टिप्पणी।

इसके बाद ही प्रज्ञप्ति नाम की विद्या द्वारा उसे अपने पिता उदयन की मृत्यु की सूचना मिलती है।

'कथाकोश' (टानी, २०६) में नल जिस समय वन में देवदन्ती (दमयन्ती ?) को छोड़कर चला जाता है, ठीक उसी समय, सोई हुई देवदन्ती स्वप्न में देखती है कि 'वह आम के वृक्ष पर चढ़कर फल खा रही है और इसी बीच एक जंगली हाथी उसे आकर उखाड़ डालता है और वह निराधार पृथ्वी पर गिर पड़ती है।'

इस प्रकार के भविष्यसूचक प्रतीकात्मक स्वप्नों के सैकड़ों उदाहरण भारतीय साहित्य में मिल जायँगे। कहानीकारों ने अलंकृति और चमत्कार के लिए ऐसे स्वप्नों का खूब उपयोग किया है।

स्वप्न में अलौकिक व्यक्तियों द्वारा भविष्य-सूचना

'प्रतीकात्मक स्वप्न' के अतिरिक्त स्वप्न-सम्बन्धी दूसरा अभिप्राय है 'स्वप्न में अलौकिक व्यक्तियों द्वारा भविष्य की सूचना मिलना।' रासो में इस प्रकार के स्वप्नों की भरमार है। चन्द को तो प्रायः सरस्वती द्वारा स्वप्न में भूत और भविष्य की बातें पता चल जाती हैं। कैमास वध का पता भी उसे स्वप्न में सरस्वती द्वारा मालूम होता है। 'कथा सरित्सागर' में वररुचि को भी चन्द की तरह स्वप्न द्वारा अनेक रहस्यों का पता चलता है। भोला-राय भीमदेव के मन्त्री अमरसिंह के मन्त्र-बल से कैमास के वशीभूत होने और नागौर पर भीमदेव का अधिकार होने की सूचना भी चन्द को स्वप्न में ही मिलती है (सं १२ छं० २७२)। प्रतीकात्मक स्वप्नों की तरह ये स्वप्न अलंकृति अथवा चमत्कार-मात्र के लिए नहीं प्रयुक्त हुए हैं। कथा के विकास में इनसे सहायता मिलती है। कवि चन्द इन सूचनाओं को पाकर तदनुसार कार्य करता है।

पृथ्वीराज के पास भी प्रायः भूदेवी स्वप्न में आती हैं। बाल्यावस्था में ही पृथ्वीराज ने एक बार स्वप्न में देखा कि उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए योगिनी पुर (दिल्ली) की राज्यदेवी जुग्गनदेवी ने आकर पृथ्वीराज को गोद में ले लिया और दिल्ली का राज्याभिषेक किया।

> बालप्पन प्रथिराज ने, इह सुपनन्तर चिह्न।
> लै जुग्गिनि जुग्गिनि पुरह तिलक हथ्थ करि दिह्न॥
>
> स० ३, छं० ३

भारतीय ऐतिहासिक काव्यों में प्रायः राजा के पास स्वप्न में भूदेवी या

राज्यदेवी के आने और राजा को वरण करने की बात कही गई है। 'कीर्तिकौमुदी' में कहा गया है कि गुर्जरराजलक्ष्मी ने स्वप्न में आकर लवणप्रसाद के गले में जयमाल डाल दी।[1] यह इस बात की पूर्व सूचना थी कि लवणप्रसाद को गुजरात का राज्य प्राप्त होगा। राज्य-प्राप्ति अथवा राज्य-नाश की पूर्व सूचना के लिए ही कवियों ने इस प्रकार के स्वप्नों की कल्पना की है। 'हांसी युद्ध वर्णन' नामक बावनवें समय में कहा गया है कि हांसीपुर में शहाबुद्दीन का जोर बढ़ने पर हांसीपुर की राज्यलक्ष्मी ने स्वयं पृथ्वीराज के पास आकर स्वप्न में अपनी दुर्दशा का वर्णन किया।

हांसीपुर प्रथिराज पै चन्दै सुपन बरदाइ।
धवल वस्त्र उज्जल सुतन पुक्कारिय ग्रपराइ॥

स० ५२, छं० ५६

स्वप्न में यह सूचना पाकर पृथ्वीराज स्वयं सेना लेकर युद्ध करने जाता है। इसी प्रकार दिल्ली राज्य की राज्यश्री रावल समर जी को स्वप्न में बता जाती है कि अब मेरा स्वामी शहाबुद्दीन होगा (स० ६६, छं० २)। पृथ्वीराज के पास भी दिल्ली की भूदेवी स्वप्न में आकर कहती है कि मैं वीर पुरुष को चाहती हूँ और अब चौहान वंश में कोई ऐसा वीर पुरुष नहीं रह गया है जो मुझे अपने पास रख सके (स० ६६, छं० १००-१०३)। पृथ्वीराज को इस स्वप्न से चिन्ता होती है। यह स्वप्न भी शहाबुद्दीन द्वारा पृथ्वीराज के पराजित किये जाने की पूर्व सूचना के रूप में आया है। जैसा कि पहले कहा गया है, पृथ्वीराज को खट्टू वन में अर्थ-प्राप्ति की सूचना भी स्वप्न में भूदेवी द्वारा ही मिलती है।

इस प्रकार दोनों प्रकार के भविष्यसूचक स्वप्नों का पृथ्वीराज रासो में कई स्थानों पर उपयोग किया गया है। कहीं तो केवल अलंकृति और चमत्कार के लिए ये स्वप्न आये हैं, कहीं कथा के विकास में योग देने के लिए।

प्रेम-व्यापार में योगिनी, यक्षिणी आदि की सहायता

रासो 'आदिपर्व' में योगिनी द्वारा वीसलदेव के नपुंसक किये जाने की कहानी कही गई है। वीसलदेव की कई रानियाँ थीं, किन्तु उनका प्रेम रम्भा के समान रूप-गुणवाली पावार पटरानी पर सबसे अधिक था। उनका अधिकांश समय उसी के साथ बीतता था, अतः अन्य रानियों ने ईर्ष्या के कारण राजा को ही नपुंसक बनवा दिया।

१. द्वितीय सर्ग, श्लोक ८३-१०७।

पट रागिनि पांवार रूप रंभा गुन जुब्बन
प्रमदा प्रान समान नहीं विसरत्त इक्क छिन
रतिभोग सुरति तिन सौं सदा, कबहुंक आनन दिच्छ त्रिय
षिझि सौंति सकल एकत्रभय पुरषातन तिन बन्ध किय ।। छं० ३७० ।।

राजा को नपुंसक बनाने में रानियों ने एक योगिनी की सहायता ली। योगिनी का यह दावा था कि

तुम कहौ करूँ जीव तैं बद्ध। तुम कहौ करौं नारी विरुद्ध ।।
तुम कहौ करौं काम तैं भंग। ज्यों नारि अंग त्यों पुरुष अंग ।।
छं० ३७६

जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा गया है मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना आदि में मानव प्रारम्भ से ही विश्वास करता आ रहा है और जैसा कि नृतत्व शास्त्रीय विद्वानों का मत है, जादू-टोना मन्त्र-तन्त्र आदि में विश्वास एक प्रकार का धर्म है; अतः जनता का इसमें दृढ़ विश्वास होना उचित है और इस विश्वास का लोक-साहित्य तथा उसी के माध्यम से शिष्ट साहित्य में अभिव्यक्ति पाना भी स्वाभाविक ही है। भारतीय मन्त्र-तन्त्र-सम्बन्धी साहित्य में साधना द्वारा अनेक सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन मिलता है। मारण, उच्चाटन और वशीकरण के भी मन्त्र-तन्त्र होते हैं। 'राजतरंगिणी' जैसा ऐतिहासिक काव्य मारण-मन्त्रों के दुष्परिणाम से आद्यन्त भरा हुआ है। प्रेम-व्यापारों में उच्चाटन और वशीकरण मन्त्रों से सम्बन्धित अभिप्रायों का इतना अधिक प्राचुर्य है कि स्थान-स्थान पर ऐसी कहानियाँ मिलती हैं जिनमें कोई रानी विरक्त राजा को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मारण-मोहन-उच्चाटन आदि में निष्णात किसी प्रव्रजिका, योगिनी अथवा यक्षिणी से सहायता लेती है अथवा जिस रानी (यक्षिणी) विशेष से अत्यधिक प्रेम के कारण राजा उससे विरक्त रहते हैं उसी को कष्ट में डालने अथवा उसकी ओर से पति को विरक्त करके अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए मन्त्र-तन्त्र जानने वाली प्रव्राजिकाओं, योगिनियों आदि का उपयोग करती है। कभी-कभी, जैसा कि रासो के उदाहरण से स्पष्ट है, पति या प्रेमी की अवहेलना से उत्पन्न आक्रोश और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या के कारण मन्त्र-तन्त्र द्वारा पति या प्रेमी को ही शारीरिक कष्ट (प्रायः नपुंसक बना देना) पहुँचाने की कहानियाँ भी मिलती हैं।

इस अभिप्राय का उपयोग भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आ रहा है। महाभारत वन पर्व में वासनाकुल उर्वशी के प्रेम-निवेदन को स्वीकार न करने के कारण उर्वशी द्वारा अर्जुन के नपुंसक बनाये जाने

की बात कही हुई है। 'कथा सरित्सागर' में उर्वशी के स्थान पर रम्भा का नाम दिया हुआ है।

प्रसिद्धं चात्र यद्रम्भा तपस्येन निराकृता
पार्थेन षण्ढता शापम् ददौ तस्यै हठागता
शापस्तिष्ठता तेन वर्षं वैराट वेश्मनि
स्त्रीवेषेन महाश्चर्य रूपेणाप्यतिवाहितं ॥ ३३ । ९०,९१ ॥

प्रेम-व्यापारों में मध्यस्थता करने वाली दुष्ट प्रव्राजिकाओं, योगिनियों आदि से सम्बन्धित प्रत्येक कथाचक्र में प्रायः इस प्रकार की घटनाएँ मिलती हैं। 'कथा-सरित्सागर' में नवविवाहिता ऋषि-कन्या कदलीगर्भा से महाराज दृढ़वर्मा के अत्यधिक प्रेम के कारण उनकी महादेवी को चिन्ता होती है और वह मन्त्री को बुलाकर कदलीगर्भा को दूर करने का उपाय पूछती हैं। इसके उत्तर में मन्त्री कहता है, 'अपने स्वामी की पत्नी का विनाश अथवा वियोजन करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिए उचित नहीं, यह तो नाना प्रकार के दुष्कृत्य करने वाली प्रव्राजक स्त्रियों का कार्य है।'

तच्छ्रुत्वा सोऽब्रवीन्मन्त्री देवि कर्तुं न युज्यते
मादृशानां प्रभोः पत्न्या विनाशोऽथ वियोजनम् ॥
एष प्रव्राजक स्त्रीणां विषयः कुड्कादिषु
प्रयोगेष्वभियुक्तानां संगतानां तथाविधैः ॥
ताहि कैतव तापस्यः प्रविश्यै वानि वारिताः
गृहेषु माया कुशलाः कर्म किं किं नं कुर्वते ॥

इसी प्रकार 'कथाकोश' (टानी, पृ० ४४) में श्रीदेवी यक्षिणी की सहायता से पति का प्रेम प्राप्त करती है। यही नहीं, यक्षिणी के मन्त्र-बल से वह रानियों में राजा की सबसे अधिक प्रिय बनकर महादेवी का पद भी प्राप्त करती है। 'पार्श्वनाथ चरित' (ब्लूमफील्ड का अनुवाद, पृ० १५२) में भी यह कहानी दी हुई है जिसमें एक औषधि को जल में मिलाकर राजा को पिला देने मात्र से राजा के वश में आ जाने की बात कही गई है।[१] लोक-कथाओं में तो इस 'अभिप्राय' का प्रयोग बहुत अधिक मिलता है। फादर एलविन वेरियर ने अपनी पुस्तक 'मिथ आफ मिडल इण्डिया' (पृ० ५२०) में प्रेम-व्यापारों में मन्त्र-तन्त्र के प्रयोग से सम्बन्धित अभिप्राय को 'अलौकिक शक्ति की अभिव्यक्ति' (मैनीफेस्टेशन आफ मैजिक पावर) शीर्षक के अन्दर रखा है।

१. गृहाण तदिमां सद्यः प्रत्पयामौषधीं सुते
पाने दद्याश्च येनाशु तव भर्ता वशीभवेत ॥ ७,२०३ ॥

पुस्तक में दी हुई कई कहानियों में इस अभिप्राय का उपयोग किया है।[1] कहीं तो मन्त्र द्वारा आसक्त पुरुष को नपुंसक बनाने की बात कही गई है और कहीं अनासक्त व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करने की। इसके अतिरिक्त डे द्वारा संकलित 'बंगाल की लोक-कथाएँ'[2] पुस्तक में एक स्त्री अपने पति को इसलिए नपुंसक बनवा देती है कि वह दूसरी स्त्री से प्रेम करने के कारण उसकी अवहेलना करता है।

मन्त्र-तन्त्र की लड़ाई

मन्त्र-तन्त्र द्वारा युद्ध का वर्णन रासो में कई स्थानों पर किया गया है। कवि चन्द इस विद्या में विशेष रूप में निष्णात है। प्रायः उसकी किसी मन्त्र-तन्त्र विशारद से मुठभेड़ हो जाती है और दोनों के मन्त्र-बल की आजमाइश होने लगती है।

'भोलाराय समय १२' में वर्णित है कि गुर्जर नरेश भोलाराय भीमदेव चालुक्य के मन्त्री अमरसिंह सेवरा ने मन्त्र-तन्त्र द्वारा तथा लाले नामक स्त्री के अभिमन्त्रित चित्र द्वारा पृथ्वीराज के मन्त्री कैमास को वश में कर लिया। चन्द को स्वप्न में इस बात का समाचार मिला। उसने देवी की स्तुति की और नागौर को प्रस्थान किया। वहाँ उसने स्वप्न की बात को सच पाया। यह देखकर चन्द ने योगिनी की आराधना द्वारा अमरसिंह की मन्त्र-माया को नष्ट करने का वरदान मांगा (छं २७७-२८६)। यह समाचार पाकर अमरसिंह सेवरा ने चन्द का मन्त्र नष्ट करने के लिए मन्त्र प्रयोग किया और घट स्थापित किया (छं० २८७-२८८) जिससे एक क्षण के लिए चन्द भ्रम में पड़ गया, परन्तु फिर शीघ्र ही संभलकर अनुष्ठान करने लगा और उसने योगिनियों को जगाने का मन्त्र प्रारम्भ किया। दोनों में तान्त्रिक संग्राम शुरू हुआ। अमरसिंह ने अनेक पाखण्ड किये, पर चन्द ने मन्त्र-बल से उसे जीत लिया (२८९-३०४)।

'चन्द द्वारिका गमन' नामक ४२वें समय में उल्लेख है कि चन्द ने मन्त्र-बल से जैन मन्त्री अमरसिंह सेवरा को रथ समेत आकाश में उड़ा दिया, बवंडर उठ खड़ा हुआ तथा पट्टनपुर नगर हिलने लगा।

चंद देव किय सेव, तिन सु अमरा बुल्लाइय।
धूल रथ्थ आरूढ़, चंद असमान चलाइय ॥ छं० ८१ ॥

---

१. ६,२।३,६।५,१।१२,८५।१७,१।२१,७।२१,८।
२. डे, फोकटेल्स ऑफ बंगाल, पृ० ११०।

हल हलन्त तम्बू हल हिलियं, बन्दि भ्रत्त हैं गै पति चलियं।
चन्द मन्त्र पट्टन चल चलियं, मनो अम्ब- ताराइन तुलियं।

छन्द ८३

इसी प्रकार 'महोवा युद्ध समय' में कहा गया है कि आल्हा ने पृथ्वीराज की सेना पर निद्रास्त्र का प्रयोग किया जिससे सभी सामन्त-वीर निद्रा-मग्न हो गए और पृथ्वीराज की पराजय के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे—

आल्हा सक्ति कौ मन्त्र उपायौ। सो अरुजन कौ ईस बतायो।
निद्रा अस्त्र प्रयोग सु कीनौ। औंघत सोवत सूर नवीनौ ॥७४३॥

ऐसे कठिन समय में चन्द वरदाई ने अपने मन्त्र-बल से आल्हा के निद्रास्त्र मन्त्र का खण्डन किया। (छन्द ७६४)

'दुर्गा केदार समय', ४८, में भी गज़नी दरबार के भट्ट दुर्गा केदार का चन्द वरदाई के साथ पानीपत में पृथ्वीराज की अनुमति से मन्त्र-बल की आज़माइश वर्णित है। किन्तु यहाँ मन्त्र द्वारा युद्ध नहीं होता, वरन् चन्द और दुर्गा केदार मन्त्र-तन्त्र विद्या में अपने को एक-दूसरे से श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए अनेक प्रकार के चमत्कार दिखलाते हैं। इस प्रकार की मन्त्र-तन्त्र की लड़ाई से लोक-कथाएँ भरी पड़ी हैं। मन्त्राभिषिक्त अस्त्रों द्वारा युद्ध का अभिप्राय महाभारत से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। ऋग्वेद में भी वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि द्वारा अपने यजमानों की युद्ध में मन्त्र द्वारा सहायता वर्णित है। मन्त्र द्वारा विभिन्न चमत्कार दिखलाने के उदाहरण एलविन वेरियर की पुस्तक 'मिथ ऑफ़ मिडल इण्डिया' (२०,४।२१,२,३,४।६,१४।८,४।१०) में बहुत अधिक मिलेंगे। मन्त्र-तन्त्र की लड़ाई के उदाहरण कथासरित्सागर[१] परिशिष्ट पर्वन (द्वादश सर्ग ६४-६१) में देखे जा सकते हैं। नाथपन्थी सिद्धों, योगियों आदि के सम्बन्ध में इस प्रकार के मन्त्र-तन्त्र और सिद्ध सम्बन्धी चमत्कार की कहानियाँ जनता में बहुत अधिक प्रचलित हैं। रासो में तो कहा भी गया है कि आल्हा को निद्रास्त्र तथा अन्य मन्त्रों की सिद्धि गुरु गोरखनाथ की कृपा से प्राप्त होती है।

मृत व्यक्ति का जीवित हो जाना

संजीवनी मन्त्र द्वारा अथवा मन्त्राभिषिक्त अमृत जल द्वारा मृत व्यक्तियों के जीवित हो जाने की चर्चा भी कथाओं में बहुत अधिक आती है।

१. टॉनी का अनुवाद : 'ओशन ऑफ़ स्टोरी' भाग १, पृ० ३४३ तथा भाग २ पृ० ४६८।

कभी-कभी देवताओं द्वारा भी मृत व्यक्ति जीवित कर दिए जाते हैं। 'राजतरंगिणी' जैसे ऐतिहासिक काव्य में भी मृत व्यक्तियों के जीवित हो जाने की बात कही गई है।[1] रासो में भी महोबा युद्ध समय में आल्हा के मन्त्र से पृथ्वीराज के सभी सामन्त धराशायी हो जाते हैं, किन्तु चन्द संजीवनी मन्त्र द्वारा उन्हें पुनः जीवित कर देता है (छन्द ६, ७६६-८०४)। जैसा कि पेंजर ने लिखा है नायक द्वारा मारे गए व्यक्ति अथवा जानवर का पुनः जीवित हो जाना निजन्धरी-कथाओं में प्रयुक्त होने वाला अत्यन्त प्राचीन अभिप्राय है।[2] एलविन वेरियर ने 'मिथ ऑफ़ मिडल इण्डिया' में इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली कहानियों की एक विस्तृत सूची दी है।[3]

आकाशवाणी

'आकाशवाणी' भारतीय साहित्य का इतना प्रचलित अभिप्राय है कि नाटकों में तो संस्कृत में शायद ही ऐसा कोई नाटक हो जिसमें आकाशवाणी की सहायता न ली गई हो। कथाओं में नायक नायिका को प्रायः आकाशवाणी द्वारा रहस्यमय घटनाओं की सूचना मिलती है। आकाशवाणी एक प्रकार से परोक्ष रूप से अलौकिक शक्तियों द्वारा सहायता है। प्रायः ऐसी उलझनपूर्ण परिस्थिति में ही, जब कि किसी ठीक निष्कर्ष पर पहुँचना किसी पात्र के लिए असंभव हो जाता है, आकाशवाणी होती है और उस पात्र की कठिनाई हल हो जाती है। देव वाणी होने के कारण आकाशवाणी की सत्यता पर कभी भी अविश्वास नहीं किया जाता। उसका सत्य होना निश्चित है।

रासो में वानवेध नामक सड़सठवें समय में कविचन्द को जालपा के मन्दिर में आकाशवणी द्वारा ही यह मालूम होता है कि पृथ्वीराज बन्दी बना लिया गया है और उसकी आँखें निकाल ली गई हैं जिससे दिल्ली की प्रजा विपन्नावस्था में पड़ी हुई है। कविचन्द को आकाशवाणी द्वारा यह आदेश दिया जाता है कि समय आ गया है अब तुम अपने कर्त्तव्य से उऋण होओ और भ्रम छोड़कर धर्म-कार्य करो।

---

१. देखिए, नरेशचन्द्र दत्त 'किंग्स ऑफ काश्मीर' एपेण्डिक्स सी, कलकत्ता, १८६७।

२. The idea of the hero finding the person or animal he has killed coming to life again is one of the oldest motifs in fiction. Ocean of Story, Vol. III.

३. देखिए, 'मिथ ऑफ़ मिडल इण्डिया' प्रथम आवृत्ति, पृ० ५२०।

घरट घोर संक्रमन भइय आकास सवन धुनि ।
तथि त्रिविध गुन तीन भीन जोगिनि पुर थानइ ॥
गइन चन्द विष अन्ध सुनिय संचरि किलकानइ ।
परिनाम विरत उर तन्न मन आस वास आसन तज्यौ ।
रस राज सपिम्मरु मित्त तन भ्रम्म छाँड़ि भ्रम्मइ भज्यौ ॥ छं० २ ॥

दूर देश में पृथ्वीराज के ऊपर पड़ने वाली विपत्ति का कविचन्द को और कैसे पता चल सकता था? और कथानक को आगे बढ़ाने के लिए इस बात का किसी भी प्रकार ज्ञान होना आवश्यक था। इस 'अभिप्राय' के उपयोग से यह समस्या बड़ी सरलता से हल हो गई और कथा-प्रवाह में किसी भी प्रकार का गतिरोध नहीं उपस्थित हुआ।

राजा का दैवी चुनाव

प्रथम अध्याय में कथानक-रूढ़ियों पर किये गए कार्य पर विचार करते समय 'पंचदिव्याधिवास' अर्थात् दैवी शक्तियों द्वारा राजा के चुनाव पर विचार किया गया है। शहाबुद्दीन का चुनाव भी बिलकुल दैवी तो नहीं, पर इसीसे मिलता-जुलता है। जलालुद्दीन की निस्सन्तान मृत्यु होने पर वजीरों के सम्मुख यह समस्या उपस्थित हुई कि अब राज्य का उत्तराधिकारी किसे माना जाय। वस्तुतः जलालुद्दीन के एक पुत्र था, जिसे माता के साथ कई वर्ष पूर्व उसने इस डर से राज्य से निष्कासित कर दिया था कि कहीं वह स्वयं उसे ही मारकर स्वयं राज्य का अधिकारी न बन बैठे। बहुत ढूँढ़ने पर उन्हें गोर (कब्रिस्तान) में एक बालक दिखलाई पड़ा। सूर्य के समान प्रकाशित होने वाले बालक के तेज को देखकर मन्त्रियों ने उसे ही राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय किया।

वरष पंच अनि ऊपर वीतं। हुअं साह सुरतान सुअतं।
सबै षान मिलि मन्त्र विचारं। कवन सीस अब छत्र सुधारं॥
सेष एक मधि गोर निवासी। तिहि अद्भुत रस दिष्षि प्रकासी।
आष्षिय आइ जहाँ मिलि षानं। कुदरति कथा एक परमानं।

'सं० २४, छं० १६'

पंचदिव्याधिवास द्वारा राजा के चुनाव में भी जो व्यक्ति राजा चुना जाता है वह प्रायः कहीं-न-कहीं का राजा अथवा राजपुत्र रहता है। होता यह है कि किसी विपत्ति के कारण विपन्नावस्था में वह इधर-उधर घूमता हुआ किसी ऐसे राजा के राज्य में पहुँच जाता है जिसकी ठीक उसी समय निस्संतान मृत्यु हो जाती

है और मन्त्रियों के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि किसको राजा बनाया जाय। अधिवासित दिव्य पंचक (हाथी, अश्व, चामर छत्र और कुम्भ या कभी-कभी केवल हाथी) भी प्रायः किसी वृक्ष के नीचे सोये या ऐसे ही किसी स्थान पर पड़े व्यक्ति को राजा चुनते हैं।

५

कवि-कल्पित कथानक-रूढ़ियाँ

जैसा कि ब्लूमफील्ड ने लिखा है कि भारतीय कथा-साहित्य पर व्यापक रूप से विचार करने वाले विद्वान् को सम्भवतः सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अनुभव उन अभिप्रायों को देखकर होगा जो निजन्धरी विश्वासों पर आधारित संश्लिष्ट (आर्गैनिक) अभिप्रायों से भिन्न कोटि के हैं। इन्हें साधारण अभिप्राय (माइनर मोटिफ्स) कहा जा सकता है और ये कथा-साहित्य के प्रत्येक पृष्ठ पर मिल जायँगे। पहली बार देखने पर तो ये किसी कहानीकार-विशेष की अपनी कल्पना की उपज मालूम पड़ते हैं और ऐसा लगता है कि इस व्यक्ति ने अपनी कल्पना का आश्रय लेकर इस प्रकार के कथात्मक कौशल की मौलिक उद्भावना की है, क्योंकि अगर कहानीकार अपनी कल्पना-शक्ति के द्वारा इस प्रकार की कोई मौलिक उद्भावना नहीं करता है तो वह कहानीकार ही क्या है ! इस प्रकार के अनेक 'अभिप्राय' भारतीय साहित्य में मिलेंगे। उदाहरण के लिए विपर्यस्ताभ्यस्त अश्व अर्थात् घोड़े को जिधर जाना चाहिए उधर न जाकर प्रतिकूल दिशा की ओर भाग खड़ा होना और उस पर सवार नायक का किसी जंगल आदि में पहुँचकर साहसपूर्ण विचित्र-विचित्र कार्य करना, नायक का जंगल में किसी झील के किनारे पहुँचना और किसी सुन्दरी स्त्री से साक्षात्कार, किसी क्रुद्ध हाथी से कुमारी की रक्षा और प्रेम (वीरतापूर्वक हाथी को मारकर, अथवा वंशी द्वारा या अन्य उपायों से उसे वश में करके), भरुण्ड आदि पक्षी की पुच्छ पर बैठकर दूर देश की यात्रा और वहाँ कोई अद्भुत कार्य, तृषाकुल होकर जल की तलाश में जाना और किसी अद्भुत घटना का घटित होना, शुक शुकी की बातचीत, किसी राक्षस दैत्य आदि द्वारा हो गए उजाड़ नगर में पहुँचना और राक्षस को मारकर या किसी प्रकार उसे वश में करके वहाँ का राजा होना, भावी पति या पत्नी का स्वप्न में दर्शन और

प्राप्ति के लिए उद्योग आदि इसी प्रकार के अभिप्राय हैं। कल्पनाजन्य प्रतीत होने वाली ये सब-की-सब घटनाएँ बाद में चलकर घिसी-पिटी रूढ़ि सिद्ध होती हैं।[१] वस्तुतः काल्पनिक कहानियों का अधिकांश भाग कहानी कहने वालों की निजी कल्पना पर आधारित नहीं है। वैसे इनका प्रारम्भिक प्रयोग मौलिक कल्पना का आश्रय लेकर ही किया गया होगा, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु आज यह पता लगाना कठिन है कि कब और कहाँ इसका सबसे पहले उपयोग हुआ है। कथा-सम्बन्धी काल्पनिक भावों और विचारों के प्रारम्भिक रूप का पता अब तक के प्राप्त कथा-साहित्य के आधार पर नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि इनका सम्बन्ध निश्चित रूप से प्रारम्भिक लोक-वार्ता सम्बन्धी भावों और विचारों (प्रिमिटिव फोक-लोर आइडियाज़) से है और इस विषय पर हमारे पास कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। भारतीय लोक-वार्ता सम्बन्धी जो भी पुस्तकें अब तक संकलित और सम्पादित हुई हैं उनमें से अधिकांश निजन्धरी और पौराणिक कहानियों के प्रारम्भिक रूप का पता नहीं देतीं।[२] उनमें से अधिकांश पंचतन्त्र, जातक अथवा विदेशी कहानियों के आधार पर गढ़ी गई हैं।[3] इसीलिए ब्लूमफील्ड ने इन्हें तथाकथित फोक-लोर सम्बन्धी पुस्तकों की संज्ञा दी है।

पृथ्वीराज रासो में इस प्रकार के कवि-कल्पित 'अभिप्रायों' का भी बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कवि-कल्पित अभिप्राय का यह अर्थ बिलकुल नहीं है कि उसमें अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्व बिलकुल हो ही नहीं। अलौकिक और अतिप्राकृत तत्त्व उसमें हो सकते हैं, किन्तु वे प्रधान नहीं होते अर्थात् ये अभिप्राय मुख्य रूप से निजन्धरी विश्वासों पर आधारित नहीं होते। इस प्रकार की भारतीय कथानक-रूढ़ियाँ अधिकतर मध्ययुगीन समाज के कवियों की देन हैं, जिन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे सम्भावना पर जोर देकर अनेक ऐसी घटनाओं का

१. ओशन ऑफ स्टोरी, ब्लूमफील्ड, प्राक्कथन, भाग ७, पृ० २२-२३।

२. The so-called folk-lore books of India, of which we have some sixty or more, are certainly not, for the overwhelming part of them, are mythogenic. Bloom Field—Foreword—The Ocean of Story, vol 7., p. 23.

३. They are as a rule popular recasts of stories from Pancha-Tantra, Jatak etc. as well as to course of many foreign sources. Ibid., p. 23.

नियोजन कथाओं में किया है जो कथा में गति और चमत्कार लाने की दृष्टि से उपयोगी होने के कारण बार-बार-दुहराई जाकर रूढ़ि बन गईं। पद्मावत और रासो दोनों में इस प्रकार की रूढ़ियों का खूब व्यवहार किया गया है। जैसा कि डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है, "रासो में तो प्रेम सम्बन्धी सभी रूढ़ियों का मानो योजनापूर्वक समावेश किया गया है। जो बात मूल लेखक से छूट गई थी उसे प्रक्षेप करके पूरा कर लिया गया है।"[1]

कवि-कल्पना पर आधारित निम्नलिखित कथानक-रूढ़ियों का रासो में व्यवहार हुआ है—

१. शुक सम्बन्धी रूढ़ि।
   (क) कहानी कहने वाले श्रोता वक्ता के रूप में।
   (ख) कथा की गति को अग्रसर करने वाले सन्देशवाहक या प्रेम-संघटक के रूप में।
   (ग) कथा के रहस्यों को खोलने वाले अनपराद्ध भेदिया के रूप में।
२. रूप-गुण श्रवणजन्य आकर्षण।
३. नायिका का अप्सरा का अवतार होना।
४. हंस, कपोत आदि द्वारा सन्देश।
५. स्वप्न में भावी प्रिय या प्रिया का दर्शन।
६. प्रिय अथवा प्रिया की प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन।
७. मन्दिर में पूजा के लिए आई कन्या का हरण।
८. प्राण देने की धमकी।
९. सिंहल द्वीप।
१०. बारहमासे के माध्यम से विरह-वेदना।
११. उजाड़ नगर का मिलना।
१२. पिपासा और जल की खोज में जाने पर अद्भुत अकल्पित घटना का घटित होना।
१३. जंगल में मार्ग भूलना।

इनमें से प्रत्येक 'अभिप्राय' पर थोड़ा विस्तृत विचार करने की आवश्यकता है। रासो में प्रयुक्त इन अभिप्रायों का भारतीय साहित्य में पहले से ही प्रयोग होता चला आ रहा है और अत्यधिक प्रयोग के कारण ही इनका यान्त्रिक ढंग से कहानियों में व्यवहार किया गया है। इसे ठीक-ठीक समझने

१. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ७५।

के लिए इन सभी अभिप्रायों पर अलग-अलग तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है।

शुक सम्बन्धी रूढ़ि

पशु-पक्षियों की बातचीत और उनके महत्त्वपूर्ण कार्यों द्वारा कथा को गति देने की परम्परा भारतीय कथा-साहित्य में अत्यन्त प्रचलित है। बंगाल के लोक-साहित्य पर विचार करते हुए दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है कि "बंगाली लोक-कथाओं में विहंगम और विहंगमी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पात्र हैं।" जब कभी भी नायक या नायिका कठिनाई में पड़ते, पक्षी उचित मंत्रणा अथवा भविष्य-कथन द्वारा उनकी सहायता करते पाये जाते हैं।[1] पशु-पक्षियों की अपनी भाषा होती है और वह भाषा मनुष्यों द्वारा समझी जा सकती है, यह अत्यन्त स्वाभाविक और संसार-भर की लोक-कथाओं में व्यापक रूप से प्रचलित 'अभिप्राय' है।[2] पक्षियों की बातचीत ही कथाओं में अधिक आती है। इसका कारण यह है कि पक्षी पशुओं की अपेक्षा अधिक सरलता से किसी अगम्य स्थान, समुद्रस्थित द्वीप या वृक्ष आदि तक जा सकते हैं। पक्षियों में भी शुक सबसे अधिक कुशल और सहायक समझा जाता है, क्योंकि वह मनुष्य की वाणी का कुछ हद तक अनुकरण कर लेता है। मानव-वाणी का थोड़ा-बहुत अनुकरण करने वाली बात को ही बाद में सम्भावना के आधार पर बढ़ाकर शुक को सकल शास्त्रवेत्ता बना दिया गया।

डॉ० हजारी प्रसाद ने 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल'[3] में शुक-सम्बन्धी रूढ़ि पर संक्षेप में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार शुक शुकी

---

१. As I have already stated Vihangan and Vihangam are the most important figures in the Bengali folk tales. When the hero or heroine falls into difficulties or dangers, the birds are often found to come to the rescue by offering advice or saying, prophetic things which are sure to be fulfilled—The Folk Literature of Bengal, p. 27.

२. The birds and beasts have a language of their own which can sometimes be understood by human beings is a most natural and universal motif of folk tales—Penzer, Ocean of Story, P. 107.

३. पृ० ७५।

तोता-मैना का कथाओं में तीन रूपों में उपयोग किया गया है।

१. कहानी कहने वाले श्रोता वक्ता के रूप में।

२. कथा को गति देने वाले महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में—प्रायः सन्देश-वाहक या प्रेम संघटक के रूप में।

३. कथा के रहस्यों को खोलने वाले अनपराध में दिया के रूप में।

रासो की कहानी शुक शुकी के संवाद के रूप में कही गई है। प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण विवाह और युद्ध के अवसर पर शुकी प्रश्न करती है और शुक उसका उत्तर देता है। शुक शुकी, तोता मैना, भृंग भृंगी आदि की बातचीत के रूप में कोई कहानी कहने की प्रथा भारतीय साहित्य में रूढ़ हो गई है। कादम्बरी की अधिकांश कथा शुक द्वारा कहलवाई गई है। कीर्तिलता की कहानी भृंग भृंगी के प्रश्नोत्तर के रूप में कही गई है। कथाकोश (टानी, पृ० २६) में एक शुकी शुक से कहती है कि आज कोई आश्चर्यजनक कहानी सुनाओ। शुक पूछता है कि कोई काल्पनिक कहानी सुनाऊँ या कोई ऐसी कहानी सुनाऊँ जो वास्तव में घटित हुई हो। शुकी कोई वास्तविक घटनापूर्ण कहानी सुनने पर जोर देती है और कहानी शुरू हो जाती है। रासो में भी इसी प्रकार शुकी शुक से कहानी सुनने का आग्रह करती है—

> कहै सुक सुकी सँभलौ। नींद न आवे मोहि।
> रय निरवानिय चन्द करि। कथ इक पूछौं तोहि। स० १४

नेमिचन्द द्वारा कन्नड़ भाषा में लिखे गए लीलावती चम्पू में एक शुक शुकी को कुसुमपुर के वासवदत्ता की कहानी सुनाता है।[1]

शुक शुकी, तोता मैना, भृंग भृंगी आदि के संवाद के रूप में कथा कहने की साहित्यिक परम्परा के सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने विस्तार के साथ विचार किया है और उसी के आधार पर रासो के मूल रूप का पता लगाने का प्रयत्न किया है।[2] शुकी शुक का संवाद इस दृष्टि से निश्चित रूप से महत्त्व-पूर्ण है। फिर भी इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। संभावना यही है कि रासो की मूल कथा शुक शुकी की बातचीत के रूप में ही लिखी गई होगी। इस विश्वास को सबसे अधिक पुष्टि कीर्तिलता में भृंग भृंगी के संवाद से मिलती है।

कथा को गति देने वाले महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में शुक शुकी का रासो

१. लीलावई कहा : डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये की भूमिका, पृ०३४।

२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, तृतीय व्याख्यान।

में दो स्थानों पर उपयोग किया गया है। पृथ्वीराज और समुद्रगढ़ शिखर की राजकन्या पद्मावती के बीच प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने में शुक का महत्त्व-पूर्ण हाथ है। पृथ्वीराज के रूप गुण की प्रशंसा द्वारा वह पद्मावती को पृथ्वीराज की ओर आकृष्ट करता है और पद्मावती का प्रेम-सन्देश लेकर पृथ्वी-राज के पास भी जाता है।

संयोगिता और इंछिनी की प्रतिद्वन्द्विता के समय संयोगिता की ओर अधिक आकृष्ट राजा को इंछिनी की वियोग-दशा की सूचना देकर सारिका ही राजा को इंछिनी की ओर आकृष्ट करती है।

पद्मावती वाली कहानी का कथानक प्रचलित लोक-कथा से लिया गया है और जायसी ने भी पद्मावत में इसी कथानक को लिया है। पद्मावत में भी शुक ही पद्मावती और रत्नसेन के बीच प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करता है। दोनों का मन्दिर में मिलन कराने तथा विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने में भी शुक का महत्त्वपूर्ण हाथ है। करकण्ड चरिउ (८,१-१६) में कथा को गति देने वाले महत्त्वपूर्ण पात्र के रूप में शुक की कहानी कही गई है। सन्देश-वाहक और प्रेम-संघटक के रूप में शुक का उपयोग लोक-कथाओं में बहुत अधिक मिल सकता है। उदाहरण के लिए इंडियन एण्टीक्वैरी में आर० सी० टेम्पल ने पंजाब की एक लोक-प्रचलित कहानी दी है जिसमें राजकुमारी को एक कुटनी बहकाकर ले जाती है। राजकुमार लौटने पर राजकुमारी को न पाकर चिन्तित होता है तो शुक उसे बतलाता है कि 'रानी की मौसी उसे बहका ले गई है।' इसके बाद शुक रानी को ढूँढ़ने निकलता है और अन्त में पता लगा ही लेता है। इतना ही नहीं, राजकुमारी को वापस लाने में भी वह राजकुमार की सहायता करता है।

सन्देशवाहक के रूप में शुक सबसे अधिक उपयोगी माने गए हैं। कथाकोश (टानी, पृ० २६) की एक कहानी में कहा गया है कि एक स्थान पर सुवर्ण द्वीप के पाँच सौ शुक वहाँ के राजा सुन्दर द्वारा इसलिए रखे गए थे कि किसी व्यक्ति के ऊपर कोई कठिनाई पड़ने पर वे तुरन्त राजा को सूचना दे सकें। कुछ आदिम जातियों में तो यह विश्वास किया जाता है कि शुक की उत्पत्ति ही प्रेम-सन्देश ले जाने के लिए हुई है। एलविन वेरियर ने शुक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मध्य प्रदेश की आदिम जातियों में प्रचलित कुछ कहानियाँ दी हैं, जिनमें इस विश्वास को अभिव्यक्ति मिली है।[१] इन कहा-

१. एलविन वेरियर 'मिथ ऑफ़ मिडल इंडिया, १०,१५।१०,१८ और ११,६ तथा अध्याय दस की भूमिका, पृ० १८२।

नियों में प्रिय अथवा प्रिया अगम्य स्थान में रहने वाले अपने प्रेमी के पास सन्देश भेजने के लिए स्वयं एक शुक का निर्माण करते और प्रेमी के पास भेजते हैं।

शुक का तीसरा रूप रहस्योद्घाटक का है। रासो में इस रूप में भी शुक आया हुआ है। स्त्री-वेश में कर्नाटकी के पास जाने वाले मन्त्री कैमास का रहस्य रानी इंछिनी को उसका शुक ही बतलाता है। रात्रि में स्त्री-वेश में कर्नाटकी के महल की ओर जाने वाले व्यक्ति को रानी इंछिनी पहचान नहीं पाती, यद्यपि चन्दन की महक और पैर के भारीपन से उसे यह सन्देह हो जाता है कि कोई व्यक्ति कर्नाटकी के पास जा रहा है। पृथ्वीराज दूर जंगल में शिकार खेलने गये हैं, अतः उनके लौटने की कोई सम्भावना ही नहीं हो सकती। इंछिनी हैरान है कि उसका शुक बोल उठता है, 'देखा आज कौआ मोती चुग रहा है, जानती है कर्नाटकी के घर में कौन है, नहीं जानती तो जान ले वह कैमास है।'

सुक चरित्र दासिय परखि कहि इंछिनि संजोइ।
काग जाइ मुत्तिय परै हरित हंस का होइ॥
सुक जंपै इंछनिय एक्क आच्चिज्ज परिष्षय।
वीर भजन मृगमद्क षाय कम्मं तन दिष्षिय॥
वचन पंषि संभरै बाल चरतित चित किन्ना।
वर आगम गम जानि भेद सुक कों किन दिन्ना॥
निसि अद्ध हथ्थ सुभ्भै नहीं बार बज्जि निसचर हरिय।
कैमास कम्म गहि दासिभरि जैन कम्म सम्हा भरिय॥ सं० ५७

छं० ६०, ६१

अर्द्धरात्रि के समय, जबकि हाथ-को-हाथ नहीं सूझता, शुक को कैमास का भेद पता नहीं कैसे मालूम हो गया? रहस्य के खुलते ही इंछिनी एक दासी के हाथ पर कज्जल से सन्देश लिखकर पृथ्वीराज के पास भेज देती है। शुक का यह रहस्योद्घाटन कैमास की मृत्यु का कारण होता है।

रहस्योद्घाटक के रूप में शुक सारिका का भारतीय साहित्य में खूब उपयोग किया गया है। श्री हर्षदेव की रत्नावली में नायिका के अव्यक्त प्रेम का रहस्य एक सारिका द्वारा उद्घाटित होता है। नायिका अपनी सखी से अपनी प्रणय-कथा कह रही थी कि सारिका ने सुन लिया। नायिका को क्या मालूम कि वह एक भेदिया के सम्मुख ही अपना सब रहस्य बता रही है। सारिका ने जो सुना उसे रटना शुरू किया और राजा को भी इस रहस्य का

पता चल गया। 'अमरु शतक' में एक श्लोक है कि दम्पति ने रात-भर प्रेमालाप किया। शुक सब सुनता रहा। प्रातः उसने बड़े लोगों के सामने ही सब दुहराना शुरू किया। वधू लज्जा से गड़ी जा रही थी; शुक को मना करने का कोई उपाय उसे नहीं सूझता था। एक युक्ति सूझी, उसके कर्णफूल में पद्मरागमणि का टुकड़ा था। उसने शुक के सामने उसे रख दिया। उसे दाड़िम फल समझकर शुक उधर आकृष्ट हुआ और उसका बकना बन्द हुआ।

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वचः।
तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतः श्रुत्वैवतारं वधू॥
कर्णालंबित पद्मरागशकलं विन्यस्य चंचोः पुरो।
व्रीड़ार्ता प्रकरोति दाड़िमफलव्याजेन वाग्बंधनम्॥

ठीक इसी प्रकार रासो में भी संयोगिता की चित्रसारी में पड़े-पड़े शुक संयोगिता और पृथ्वीराज के अन्तरंग राग-रंग को देखता रहता है। प्रातः-काल उन सबका वह ब्यौरेवार वर्णन इंछिनी और अन्य रानियों को सुनाता है। जिस प्रेम-रहस्य को प्रेमी छिपाकर रखते हैं उसे शुक ने उद्घाटित कर दिया :

जो रस रसनन अनुदिनह अधर दुराइ दुराइ।
सो रस दुज कन कन करयौ सषिन सुनाइ सुनाइ ॥सं ६२, छं० १०३॥

प्रेम सम्बन्धी रूढ़ियाँ

जैसा कि पहले कहा गया है रासो में प्रेम सम्बन्धी प्रायः सभी रूढ़ियों का व्यवहार किया गया है। भारतीय निजन्धरी प्रेम-कथाओं में प्रेम सम्बन्धी कुछ अभिप्राय विशेष रूप से प्रचलित हो गए हैं। उनमें से प्रमुख ये हैं—

१. नायिका, अप्सरा का अवतार।
२. रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण।
३. नायक अथवा नायिका का चित्र देखकर एक-दूसरे का आकृष्ट होना।
४. स्वप्न में भावी प्रिय या प्रिया का दर्शन।
५. प्रिय की प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन।
६. दैव द्वारा पूर्व निर्धारित विवाह-सम्बन्ध।
७. मन्दिर में पूजा के लिए आई कन्या का हरण।
८. प्राण देने की धमकी।
९. बारहमासे के माध्यम से विरह-निवेदन आदि।

रासो में लगभग इन सभी रूढ़ियों का व्यवहार हुआ है। भारतीय साहित्य में पूर्वानुराग-सम्बन्धी तीन अभिप्राय—रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण, चित्र-दर्शन तथा स्वप्न में भावी प्रिय-प्रिया का दर्शन—विशेष रूप से प्रचलित हैं। इनमें से दो अभिप्रायों का रासो में व्यवहार हुआ है। नायक अथवा नायिका का चित्र देखकर उसकी ओर आकृष्ट होने और तदनुसार प्राप्ति के उद्योग करने का अभिप्राय रासो में नहीं आया है। चित्र-दर्शन के अतिरिक्त अन्य सभी प्रेम सम्बन्धी अभिप्रायों का रासो में उपयोग किया गया है।

रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण

कथानक-रूढ़ियों की दृष्टि से पद्मावती, शशिव्रता और संयोगिता का विवाह महत्त्वपूर्ण है। तीनों विवाहों में कवि ने पूर्वानुराग के लिए रूप-गुण-श्रवणजन्य-आकर्षण का सहारा लिया है। शुक के मुख से पृथ्वीराज के रूप और गुण की प्रशंसा सुनकर पद्मावती पृथ्वीराज की ओर आकृष्ट होती है। शशिव्रता के भी रूप-सौन्दर्य का वर्णन पृथ्वीराज एक नट के मुख से सुनता है। नट से ही पृथ्वीराज को यह भी पता चलता है कि कन्नौज के राजा जयचन्द के भतीजे के साथ शशिव्रता का विवाह होना निश्चित हुआ है, किन्तु कन्या उसे नहीं चाहती है। कन्या का विवाह किसी व्यक्ति के साथ निश्चित होना किन्तु कन्या का उसे न चाहना भी एक प्रचलित भारतीय अभिप्राय है। संयोगिता और पृथ्वीराज का भी एक-दूसरे की ओर आकर्षण शुक-शुकी के मुख से एक-दूसरे का रूप-गुण सुनकर ही होता है। ऐसा लगता है कि रासोकार को यह अभिप्राय अत्यन्त प्रिय है। वस्तुतः भारतीय निजन्धरी कथाओं में स्वप्न में प्रिय-दर्शन अथवा चित्र-दर्शन और प्रेम, इस अभिप्राय का ही अधिक व्यवहार हुआ है। रूप-गुण-श्रवणजन्य प्रेम का भी उपयोग किया गया है, किन्तु इतना अधिक नहीं। फिर भी कथासरित्सागर की कई कहानियों में नायक-नायिका एक-दूसरे का रूप-गुण सुनकर आकृष्ट होते हैं और तदनुसार प्राप्ति का उद्योग करते हैं। कथानक में गति लाने की दृष्टि से तीनों अभिप्राय समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। कथासरित्सागर का नायक नरवाहनदत्त एक तापसी के मुख से समुद्र-पार कर्पूरसम्भव-देश की कन्या कर्पूरिका का रूप-गुण वर्णन सुनकर उसकी ओर आकृष्ट होता है और अपने मित्र गोमुख के साथ नायिका की खोज में निकल पड़ता है। यहाँ कथाकार को एक दूसरी प्रेम-कथा कहने का अवसर मिल जाता है।[1] तापसी से ही यह भी पता चला कि

१. कथासरित्सागर, टानी, पृ० ५४०-४१। कथाकोश, पृ० ८२।

यद्यपि वह किसी पुरुष को नहीं चाहती किन्तु नरवाहनदत्त के सौन्दर्य को देख-कर अवश्य आकृष्ट होगी।

पुरुषद्वेषिणी साच विवाहं नाभिवांछति।
त्वय्युपेते यदि परं भविष्यति तदर्थिनी ॥
ततत्र गच्छ पुत्र त्वं तां च प्राप्स्यसि सुन्दरीम्।
गच्छतश्चात्र तेऽटव्यां महाक्लेशो भविष्यति ॥४२॥ २०-२१

कथासरित्सागर में नट-नटी के स्थान पर प्रायः तापसियों द्वारा ही यह कार्य कराया गया है। प्रतिष्ठान का राजा पृथ्वीराज भी बौद्ध भिक्षुओं के मुख से मुक्तिपुर द्वीप की रूपलता नामक कन्या का सौन्दर्य सुनकर उस पर मुग्ध हो जाता है। प्रायः इस प्रकार का समाचार देने वाले एक ही तरह की बात कहते हैं—

देवावां पृथिवीं भ्रान्तौ न च रूपेण ते समम।
अन्यं पुमासं नारीं वा दृष्टवन्तौ क्वचित्प्रभो ॥५१॥ ११६
सैका ते सदृशी कन्या तस्याश्चैको भवानपि।
युवयोर्यदि संयोगो भवेत्स्यात्सुकृतिं ततः ॥५१॥ १२१

रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण और प्रेम के सैकड़ों उदाहरण भारतीय निजन्धरी कहानियों में मिलेंगे। अधिक ऐतिहासिक समझे जाने वाले काव्यों में भी इसका खूब व्यवहार हुआ है। विक्रमांकदेवचरित में विक्रम भी चन्द्र-लेखा के रूप की प्रशंसा सुनकर विरह-व्यथा से व्याकुल हो उठता है।

नायिका अप्सरा का अवतार

रासो में शशिव्रता और संयोगिता दोनों को अप्सरा का अवतार कहा गया है। पूर्वजन्मों में शशिव्रता का अप्सरा होना, एक हंसवेशधारी गन्धर्व से मालूम होता है। चित्ररेखा नामकी अप्सरा ने शाप के कारण शशिव्रता के रूप में देवगिरि के यादवराज भानराय के यहाँ जन्म लिया था। संयोगिता को भी रम्भा का अवतार कहा गया है। शिव के शाप से ही चित्ररेखा की तरह रम्भा को भी संयोगिता के रूप में मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा था। नायिका का अप्सरा का अवतार होना और शाप के कारण मनुष्य योनि पाना, प्रेम-कथाओं का अत्यन्त प्रचलित अभिप्राय है और प्रायः सभी निजन्धरी कहानियों में इसका व्यवहार हुआ है। कथासरित्सागर की प्रायः सभी नायिकाएँ विद्याधरी अथवा अप्सरा का अवतार कही गई हैं और प्रत्येक का मनुष्य योनि में जन्म किसी-न-किसी शाप के कारण ही होता है। चित्र-

रेखा और रम्भा दोनों के शाप की कहानी मिलती-जुलती है और कथा-सरित्सागर में भी बिलकुल इसी से मिलती-जुलती कहानी कही गई है। चित्ररेखा और रम्भा दोनों को इन्द्र के दरबार में शिव द्वारा मर्त्यलोक में जन्म लेने का शाप मिलता है। चित्ररेखा पर शिव के क्रोध का विचित्र कारण बताया गया है। चित्ररेखा तथा अन्य अप्सराएँ पूर्ण शृंगार के साथ इन्द्र के यहाँ नृत्य करती हैं। नृत्य के समय चित्ररेखा के सौन्दर्य को देखकर वहाँ उपस्थित शिव के मन में कामोद्रेक होता है और वे क्रुद्ध होकर शाप दे देते हैं।

किय शृंगार सुन्दरिय आइ उम्भी सुर वामं
देषि त्रिया मन प्रमुदि हुऔ मन उद्दित कामं। स० २५ छन्द ५६।
... ...
तब सुकोप धरि ईस दियौ सुर श्राप पतन धरि॥

रम्भा को भी इन्द्र के दरबार में शिव द्वारा ही शाप मिलता है; पर वहाँ शिव के क्रुद्ध होने का कारण दूसरा है। रम्भा शिव, ब्रह्मा आदि के रहते हुए पहले इन्द्र का गुणगान करती हैं। शिव इसे कैसे सहन कर सकते थे! उन्होंने तुरन्त शाप दे दिया।

कथासरित्सागर में प्रायः नायिकाओं के अप्सरा के रूप में अवतार के सम्बन्ध में इसी प्रकार इन्द्र के दरबार में इन्द्र शिव आदि द्वारा किसी-न-किसी कारण से शाप मिलने की बात कही गई है।[1]

दैव द्वारा पूर्वनिश्चित विवाह-सम्बन्ध

ब्लूमफील्ड ने दैव द्वारा पहले से ही निश्चित (प्रीडेस्टिएड) विवाह-सम्बन्ध को भी कथा सम्बन्धी अभिप्राय माना है।[1] शशिव्रता और संयोगिता का भी पृथ्वीराज के साथ विवाह-सम्बन्ध पूर्वनिश्चित बताया गया है। शशिव्रता के शाप की कहानी बता लेने के बाद हंसवेशधारी गन्धर्व पृथ्वीराज को यह भी बता देता है कि चित्ररेखा का जन्म शशिव्रता के रूप में पृथ्वीराज के लिए ही हुआ है।

और सुबर संकेत सुनि हंस कहै नर राज
मेन केस अवतार इह तुअ कारन कहि साज। स० २५, छन्द १६४।

संयोगिता के जन्म और विवाह का भी शाप के समय ही निश्चय

१. देखिए, 'कथासरित्सागर' (टानी का अनुवाद) पृ० ५२, १२२, २३८, ५४०, ५४१।

१. लाइफ एण्ड स्टोरीज ऑफ जैन सेवियर पार्श्वनाथ, पृ० १०६, टिप्पणी ६।

कर दिया गया था। संयोगिता के विवाह का पूर्वनिश्चय ऋषि के शाप के प्रसंग में बतलाया गया है। शिव के शाप के अतिरिक्त एक और शाप जरज ऋषि द्वारा रम्भा को दिलवाया गया है। सुमन्त ऋषि की तपस्या से शंकित होकर इन्द्र रम्भा को सुमन्त का तप भ्रष्ट करने के लिए भेजते हैं और वह इस कार्य में सफल भी होती है; किन्तु इसी बीच सुमन्त के पिता जरज मुनि को इस रहस्य का पता चल जाता है और वे रम्भा को मर्त्यलोक में अवतार लेने का शाप दे देते हैं। इसी प्रसंग में संयोगिता के जन्म और पृथ्वीराज से विवाह तथा उसी के कारण जयचन्द और पृथ्वीराज के वैर की बात भी पहले से ही कह दी गई है।

उद्धार होइ सो कहो देव। तुम चरिन सरन नहिं और सेव
सुप्रसन्न होइ रिषि कहिय एइ। अवतार लेहु पहुपंग गेहु।
तुम काज जज्ञ आरम्भ होइ। जैचन्द प्रथीदल दंद होइ
भुम्मीरभार उत्तार नारि। फुनि स्वर्ग लोक कहि तोष ब्यार।

सं० २५ छन्द १६७

पार्श्वनाथ चरित (५, १६८।८, १६८) में चन्दा का चक्रवर्ती सुवर्नबाहु के साथ विवाह दैव द्वारा निश्चित बताया गया है। कथासरित्सागर के अधिकांश विवाह-सम्बन्ध इसी प्रकार पूर्वनिश्चित बताये गए हैं।

हंस और शुक दौत्य

शुक सम्बन्धी रूढ़ि में शुक दौत्य पर विचार किया गया है। शुक के अतिरिक्त शशिव्रता के विवाह के प्रसंग में हंस दौत्य की भी कल्पना की गई है। शशिव्रता और पृथ्वीराज के पूर्वानुराग की कहानी नैषधचरित के नल-दमयन्ती की कहानी से मिलती-जुलती है। जैसा कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "जिस प्रकार नैषधचरित के नल की भाँति नटमुख से प्रिया के गुण सुनकर पृथ्वीराज व्याकुल हो उठा, उसी प्रकार एक हंस की भी कल्पना की गई है। यहाँ आकर मालूम हुआ कि सगाई जयचन्द के भतीजे वीरचन्द से होने जा रही थी। किसी गंधर्व ने यह बात सुन ली और वह हंस बनकर शशिव्रता के पास पहुँचा। नैषध के हंस की ही भाँति यह भी सोने का ही था। 'शशिव्रता के मन में पृथ्वीराज के प्रति प्रेम उत्पन्न करके वह हंस पृथ्वीराज के पास भी गया। नल की ही तरह पृथ्वीराज ने भी उसे पकड़ लिया। हंस ने शशिव्रता के रूप और गुण का वर्णन किया। पृथ्वीराज के मन में भी शशिव्रता की प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न हुई। हंस दौत्य द्वारा

पृथ्वीराज और शशिव्रता दोनों के मनमें पूर्वानुराग उत्पन्न हुआ। शुक के मुख से शशिव्रता का रूप-गुण सुनकर पृथ्वीराज विरह-वेदना से व्याकुल हो उठता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में कामदेव उसे प्रकृति की कमोद्दीपक वस्तुओं द्वारा पीड़ा पहुँचाता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं के माध्यम से विरह-निवेदन प्रचलित भारतीय अभिप्राय है। मुख्य रूप से यह काव्य सम्बन्धी अभिप्राय है, किन्तु कथाओं में भी इसका उपयोग कम नहीं किया गया है। संयोगिता के प्रसंग में भी कवि ने षट्ऋतु-वर्णन के माध्यम से पृथ्वीराज की प्रत्येक रानी की विरह-व्यथा का वर्णन किया है। पृथ्वीराज जयचन्द का यज्ञ नष्ट करने और संयोगिता को बलपूर्वक हर लाने के उद्देश्य से चलना चाहते हैं। चलते समय प्रत्येक रानी के पास विदा लेने जाते हैं, किन्तु जिस ऋतु में जिस रानी के पास जाते हैं, वह उस ऋतु के मार्मिक वर्णन द्वारा अपनी विरह-व्यथा का निवेदन करती है और इन्हें रुक जाना पड़ता है। इस प्रकार प्रत्येक ऋतु किसी-न-किसी रानी की विरह-कथा सुनने में ही बीत जाती है और पृथ्वीराज का जाना नहीं होता। पृथ्वीराज निराश होकर चन्द से पूछते हैं :

षट् ऋतु बारहमास गम फिरि आयौ रु बसन्त।
सो रित चन्द बताउ मुहि तिया न भावै कन्त॥

ऋतु शब्द पर श्लेष करते हुए चन्द उत्तर देता है—

रोस भरै उर कामिनी, होइ मलिन सिर अंग।
उहि रिति त्रिया न भावई, सुनि चुहान चतुरंग॥

पद्मावत में भी जायसी ने बारहमासे के माध्यम से नागमती की विरह-वेदना का वर्णन किया है। सन्देशरासक में भी कवि ने विरहिणी नायिका की विरह-व्यथा का वर्णन करने के लिए इसी कौशल का उपयोग किया है।

प्रिय-प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन

प्रिय अथवा प्रिया की प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन और शिव-पार्वती द्वारा मनोरथ-सिद्धि का वरदान भारतीय साहित्य का बहुत पुराना और चिराचरित अभिप्राय है। इस अभिप्राय द्वारा भारतीय प्रेम का आदर्श रूप व्यक्त होता है। भारतीय नारी द्वारा अभीष्ट प्रिय की प्राप्ति के लिए शिव-गौरी का पूजन ठोस यथार्थ पर आधारित है और इस विश्वास की जड़ भारतीय जीवन, कम-से-कम नारी-जीवन में, बहुत गहराई तक गई हुई है। प्रिय-प्राप्ति के लिए शिव-पार्वती पूजन का अभिप्राय शशिव्रता के विवाह के प्रसंग में आया है। नट द्वारा शशिव्रता के रूप-गुण का वर्णन सुनकर पृथ्वीराज ने

शशिव्रता की प्राप्ति के लिए शिव की आराधना की और शिव ने आधी रात के समय स्वप्न में दर्शन देकर मनोरथ सिद्धि का वरदान दिया।

हर सेवा राजन करत कमिय मास जब संग।
अद्ध निसा शिव आइके दिय सु वचन मन रंग ॥

शशिव्रता ने भी शिव-पूजन द्वारा पृथ्वीराज से विवाह का वर प्राप्त किया था।

वचन सिवा सिव वाच दिय पति पावै चहुआन।

रामचरितमानस में सीता भी गौरी पूजन के लिए जाती हैं और कथा सरित्सागर में कलिंग सेना सोमप्रभा को प्राप्त करने के लिए शिव की आराधना करके वरदान पाता है।

हठाद्यदि हराम्येतां तदेतन्ये न युज्यते।
तदेतत्प्राप्तये शंभुराराध्यस्तपसामया ॥२०।६।

दशकुमार चरित में काशीराज चण्डसिंह की कन्या कान्तिमती भी इसी प्रकार शिव-पूजन के लिए चलती है। 'लीलावई कहा' में भानुमती भी प्रिय की प्राप्ति के लिए भवानी की आराधना करती है।[1]

शिव-मन्दिर में कन्या-हरण

मन्दिर में देवी-पूजन के लिए आई कन्या का हरण भी पुराना भारतीय अभिप्राय है। कन्या-हरण का अभिप्राय रासोकार को इतना प्रिय है कि पद्मावती, शशिव्रता और संयोगिता तीनों के विवाहों के प्रसंग में उसने इसका उपयोग किया है। पद्मावती शिवालय में मिलने की पूर्व सूचना भेज देती है। नियत समय पर जब पद्मावती के विवाह की तैयारियाँ होती हैं तो वह सखियों के साथ शिव-मन्दिर में पूजा के लिए जाती है। पृथ्वीराज तो पूर्व सूचना के अनुसार तैयार रहता ही है; मन्दिर से बाहर निकलते ही पद्मावती को घोड़े पर बिठाकर चल देता है। सखियाँ और वाहक चित्र-लिखे-से देखते रह जाते हैं। यादवराज विजयपाल को सूचना मिलती है, युद्ध होता है, युद्ध में यादवराज पराजित हो जाता है, तब तक पृथ्वीराज पद्मावती को लेकर दिल्ली पहुँच जाता है।

शशिव्रता स्वयं तो हरण किये जाने का प्रस्ताव नहीं रखती, किन्तु जयचन्द के भतीजे से विवाह किये जाने पर आत्महत्या कर लेने की धमकी अवश्य देती है। प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है कि 'आत्महत्या की धमकी' कथा को बढ़ाने वाला साधारण अभिप्राय (माइनर मोटिफ़) है। ब्लूमफ़ील्ड

१. 'लीलावई कहा' : सम्पादक, डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, भूमिका।

ने प्रभावक चरित से एक उद्धरण दिया है जिसमें शशिव्रता की तरह ही रुक्मिणी अपने पिता से कहती है कि अगर उसे वज्र से विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती तो वह चिता में जलकर अपना प्राण त्याग देगी।[1] पार्श्वनाथ चरित में इस अभिप्राय का कई स्थानों पर उपयोग किया गया है।[2] शशिव्रता की इस धमकी के कारण ही यादवराज भान दूत भेजकर पृथ्वीराज को शशिव्रता से शिव-मन्दिर में मिलने का निमन्त्रण देते हैं। पद्मावती की तरह यहाँ भी शशिव्रता पूजा के बहाने मन्दिर में जाती है और पृथ्वीराज उसे हर ले जाता है। परम्परा के अनुसार इसके बाद युद्ध भी होता है और अधिक भयंकर रूप में होता है। संयोगिता-हरण भी लगभग इसी प्रकार हुआ है।

कन्या-हरण का अभिप्राय भारतीय साहित्य में महाभारत से ही प्रयुक्त होता आ रहा है। अर्जुन ने सुभद्रा को इसी प्रकार हरा था। कृष्ण ने भी रुक्मिणी को इसी प्रकार हरा था और रुक्मिणी-हरण के आदर्श का ही रासोकार ने अनुकरण किया है। हंस पृथ्वीराज को संकेत करता है कि आप शशिव्रता को उसी प्रकार हर ले जाइये 'ज्यों रुकमिनि हरिदेव।' पद्मावती ने भी पृथ्वीराज के पास शुक द्वारा सन्देश भेजा था कि मैं आपको उसी प्रकार वरण करती हूँ जैसे रुक्मिणी ने कृष्ण को किया था—

दिष्षंत दिष्ट उच्चरिय वर इक पलक बिलम्ब न करिय।
अलगार रयन दिन पंच महि ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय॥

२०, ३४।

'शिव-मन्दिर में प्रिय युगलों के मिलन' का अभिप्राय पद्मावत में भी आया है और वहाँ भी शुक द्वारा ही पद्मावती और रतनसेन का मन्दिर में मिलन होता है, किन्तु पद्मावत में पद्मावती पहले से जानती रहती है कि मन्दिर में रतनसेन से भेंट होगी और शशिव्रता इससे बिलकुल अनभिज्ञ रहती है। इस अनभिज्ञता के कारण रासोकार को पृथ्वीराज और संयोगिता की अन्तर्वृत्ति के निरूपण का अच्छा अवसर मिल गया है और उसने बड़ी सफलता से दोनों के मनोभावों का चित्रण किया है।

शिव-मन्दिर में प्रिय युगलों के मिलन का अभिप्राय कथा सरित्सागर में भी कई स्थानों पर आया है। उदाहरण के लिए शक्तिदेव और मत्स्य-कन्या का मिलन दुर्गा की कृपा से एक मन्दिर में होता है।[3]

१. ब्लूमफ़ील्ड, लाइफ़ एण्ड स्टोरीज़ ऑफ़ जैन सेवियर पार्श्वनाथ, पृ० ८३।

२. वही, पृ० ८३, टिप्पणी १५।

३. टानी का अनुवाद, पृ० २२७।

स्वप्न में भावी प्रिया का दर्शन

स्वप्न में भावी प्रिया के दर्शन का अभिप्राय रासो में रूढ़ि रूप में ही प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उसमें वह चमत्कार नहीं आ पाया है जो निजन्धरी कहानियों में इस अभिप्राय के उपयोग से आ जाता है। 'हंसावती विवाह' नामक छत्तीसवें समय में पृथ्वीराज हंसावती से विवाह होने के पूर्व ही स्वप्न में उसे देखता है। इसी प्रकार संयोगिता को भी वह स्वप्न में देखता है। किन्तु यहाँ पृथ्वीराज हंसावती और संयोगिता दोनों से प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से परिचित अवश्य रहता है। वह उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और उस प्रयत्न के समय स्वप्न में उन्हें देखता है। किन्तु इस अभिप्राय का उपयोग करने वाली निजन्धरी कहानियों में प्रायः प्रेमी स्वप्न में किसी स्त्री को देखकर उसे प्राप्त करने का उद्योग करता है। उसे स्वप्न में देखी हुई भावी प्रिया के नाम, गुण, स्थान आदि का बिलकुल पता नहीं रहता। लगता है कि केवल रूढ़ि-पालन के लिए ही रासोकार ने इस रूढ़ि का उपयोग किया है, उससे कथा में कोई चमत्कार नहीं उत्पन्न हो सका है।

पद्मावती की कहानी

रासो में पद्मावती की जो कहानी दी हुई है, वही कहानी थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ जायसी के पद्मावत में भी कही गई है। नायिका का नाम भी दोनों में एक ही है और कथा की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी प्रायः एक ही हैं। एक ही प्रकार की कथानक-रूढ़ियों का भी व्यवहार दोनों में हुआ है। जिस प्रकार रासो में शुक पृथ्वीराज और पद्मावती के विवाह-सम्बन्ध-स्थापन में सहायता करता है, ठीक उसी प्रकार जायसी में एक शुक की कल्पना की गई है। शुक दौत्य और रूप-गुण-श्रवणजन्य आकर्षण दोनों में वर्णित हैं। दोनों ही में प्रिय युगल का शिव-मन्दिर में ही मिलना भी होता है। पद्मावत में नायिका सिंहल देश की कन्या बताई गई है। भारतीय कथा-साहित्य में सिंहल देश की राजकुमारी से विवाह की बात एक प्रकार का अभिप्राय बन गई है और कथानक-रूढ़ि के रूप में ही बार-बार इसका कथाओं में उपयोग किया गया है। जैसा कि डा० उपाध्ये ने लिखा है, "सिंहल देश की राजकुमारी से विवाह कराने से कहानीकारों को अनेक रोमानी घटनाओं को लाने का अवसर मिलता है।"[१] और यही कारण है कि भारतीय साहित्य में सिंहल

१. The idea of marrying a Sinhmal princess is decidedly attended with some adventure and romance—Dr. A. Upadhye—Introduction, Lilavai Kaha.

देश की राजकन्या से विवाह के अनेक प्रसंगों की चर्चा आती है। श्री हर्षदेव की रत्नावली की नायिका सिंहल देश की कन्या है। कौतूहल की 'लीलावई कहा' में भी नायिका सिंहल देश की कन्या कही गई है।[1] कथा सरित्सागर में विक्रमादित्य सिंहल देश की कन्या मदनलेखा से विवाह करता है। इन सभी कहानियों में सिंहल देश को समुद्र-स्थित कोई द्वीप बताया गया है। पद्मावत में भी सिंहल दक्षिण दिशा में समुद्र-स्थित द्वीप ही कहा गया है। रासो में हूबहू वही कहानी होते हुए भी पद्मावती उत्तर देश की राज-कन्या बताई गई है, किन्तु उसके नगर का नाम 'समुद्र शिखर' बताया गया है। द्विवेदी जी का मत है कि नगर का नाम 'समुद्र शिखर' यह सूचित करता है कि उस देश का सम्बन्ध किसी समय समुद्र से था। फिर उसका राजा विजयसिंह सिंहल के प्रथम राजा विजयसिंह से मिलता-जुलता है और जादू-कुल में सम्भवतः यातुधान कुल की यादगार बनी हुई है।

उत्तर दिसि गढ़ गढ़न पति समुंद शिषर इक दुग्ग।
वहं सुविजय सुरराज पति जादू कुलह अभग्ग॥

सिंहल देश के बारे में इस उलझन का कारण यह है कि परवर्ती काल की अनुश्रुतियों में सिंहल देश, त्रियादेश और भजरीवन को एक-दूसरे से उलझा दिया गया है। यही कारण है कि बाद में उसे उत्तर दिशा में स्थित कोई देश समझा जाने लगा। पद्मावत के समय तक यह उलझन नहीं थी। इससे स्पष्ट पता चलता है कि रासो में पद्मावती की कहानी १६वीं शताब्दी के बाद जोड़ी गई है।

उजाड़ नगर

किसी राक्षस के कारण उजाड़ हो गए नगर की चर्चा कथाओं में प्रायः आती है। प्रायः कहानियों में नायकों को किसी ऐसे उजाड़ नगर में पहुँचने और वहाँ अद्भुत कार्य करने का अवसर मिलता है। कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त एक बार एक ऐसे ही उजाड़ नगर में पहुँचते हैं जहाँ के सभी व्यक्ति काष्ठ यन्त्र के बने हुए थे और वे इस प्रकार घूम रहे थे जैसे कि जीवित हों—

प्रविश्य तत्र विपणी मार्गेण स ददर्श च
काष्ठ यन्त्रमयं सर्वं चेष्टमानं सजीववत॥
वाणी विलासिनी पौरजनं जनित विस्मयं।
विज्ञानमानं निर्जीव इति वाग्विरहाप्तरम्। ४३, १०-११।

---

१. लम्बक १८, पृ० ५१८ (बम्बई १६३०)।

जीवित मनुष्य के रूप में वहाँ केवल एक ही व्यक्ति था राज्यधर। राज्यधर जिस समय आया था वह नगर बिलकुल जनशून्य था—

ततः समुद्रनैकट्य शंकात्यक्त विमानकः।
पद्मयां व्रजन्निहं प्राप्तः शून्यं पुरमिदं क्रमात् ॥

वहाँ से वह भागने ही वाला था कि रात्रि में सोते समय एक दिव्य रूपधारी व्यक्ति ने उसे कहीं अन्यत्र न जाकर वहीं निवास करने के लिए कहा। राज्यधर को जिस वस्तु की भी आवश्यकता होती थी सोचने-मात्र से उस दिव्य शक्ति के द्वारा उसे प्राप्त हो जाती थी, किन्तु स्त्री और सहायक व्यक्ति उसे प्राप्त नहीं हो सकते थे। इसीलिए लकड़ी आदि के द्वारा माया-यन्त्र बनाने में विचक्षण होने के कारण उसने लकड़ी के यन्त्र के मनुष्यों का निर्माण किया था—

भार्या परिच्छेदो वा मे चिन्तितस्तु न निष्ठति।
तेन यन्त्रमयोऽयं जनः सर्वः कृतो मया ॥

पार्श्वनाथचरित में भीम और मतिसागर इसी प्रकार एक ऐसे उजाड़ नगर में पहुँच जाते हैं जहाँ वैभव के सभी साधन रहते हुए भी गृह-हाट सभी जन-शून्य थे। जीव के नाम पर उन्होंने केवल एक सिंह को देखा जो एक मनुष्य का भक्षण करने ही वाला था—

ऋद्धिपूर्णांश्च शून्यांश्च पश्यन हट्ट गृहानसौ।
तत्रैकं सिंहमद्राक्षीद मुखात्त नरपुंगवम्। ३२२।

उस नगर के उजाड़ होने का कारण भीमदेव को स्वप्न में मालूम होता है। हेमपुर (नगर का नाम) में हेमरथ नाम का एक राजा था जिसके पुरोहित चण्ड को नगर के सभी व्यक्ति घृणा करते थे। राजा भी स्वभाव से ही बहुत क्रूर था। किसी ने राजा से झूठे ही कह दिया कि चण्ड का किसी मातंगी (नीच जाति की स्त्री) से सम्बन्ध है। क्रूर राजा ने वास्तविकता का पता लगाये बिना ही चण्ड को रुई में लपेटकर जलते हुए तेल में डलवा दिया। मृत्यु के बाद वह पुरोहित सर्वगिला नामक राक्षस के रूप में पैदा हुआ और पूर्व जन्म के वैर का स्मरण करके उसने नगर के सभी व्यक्तियों को नष्ट कर दिया तथा सिंह का रूप धारण कर राजा को भी जा पकड़ा। भीमदेव ने जिस सिंह को देखा था वह यही राक्षस सर्वगिला ही था, वह पुरुष राजा हेमरथ थे।[1]

---

१. पुरोधास्तस्य चण्डाख्यो द्विष्टः सर्वजने पुनः
एषोऽपि नृपतिः क्रूरः प्रकृत्या कर्ण दुर्बलः।

रासो में भी अजमेर ढुंढा राक्षस के कारण जन-शून्य हो जाता है और चण्ड की तरह ही वीसलदेव गौरी नामक वणिक-कन्या का सतीत्व नष्ट करने के कारण शापग्रस्त होकर ढुंढा नामक राक्षस के रूप में ढूँढ-ढूँढकर मनुष्यों का भक्षण करते हैं। सारंगदेव की मृत्यु भी ढुंढा के द्वारा ही होती है। सारंगदेव के पुत्र आनलदेव अपनी माता से पिता की मृत्यु का कारण जानकर ढुंढा राक्षस की खोज में अजमेर जाकर देखते हैं कि वहाँ मनुष्य को कौन कहे पशु भी नहीं रह गए हैं, सारी नगरी उजाड़ पड़ी हुई है।

तहं सिंघ न म्रग्ग न पंषि वनं। दिसि सून भई डर जीव घनं।
नह मातह मंत अमंत कियं। पिय की धरनी रह तंत लियं।
तिहि ठाम भरं नर नारि ननं। तिहि टाम न पंथिय पंथ कनं।
१। ५२७, ५२८

खड्ग लेकर आनलदेव ढुंढा को ढूँढते हुए एक कन्दरा में उसे पाते हैं। मनुष्य को अपने सम्मुख देखकर राक्षस को आश्चर्य होता है और वह सोचता है कि भगवान् ने आज अच्छा भोजन दिया—

नर दिष्ष अचंभ कियौ सु हियं। कहि आज विधं भल भष्ष दियं।
दुष प्यास रु निंदय राज ननं। सु गयो वरदानव ताप तनं। १। ५३१

उस राक्षस का भीषण स्वरूप देखकर साधारण व्यक्ति तो मूर्छित हो जाता, किन्तु बालक आनलदेव निजन्धरी कहानियों के नायकों की तरह तनिक भी विचलित नहीं होता और खड्ग से उसके शीश पर वार करता है—

दिष्षौ सु वीर कंदला गेह। सैं पच्च हथ्थ ता हथ्थ देह
असि असी हथ्थ झारहि झनंक। मन सहस पाइ तो ठर षनंक। १।५३४
जभाइ वीर दसनं लहक्क। उठ्यो सु रोम रोमह पहक्क
उर चंपि षग्ग सिर नाइ राज। गहराय इन्द्र दानव सु गाज। १।५३७

शंक्याऽप्यपराधस्य कुरुते दण्डमुल्बणाम्
अथ केनापि चण्डस्य द्वैषत्वादसहिष्णुना
अलिकं कथितं राज्ञो यन्मातंग्यैष विप्लुतः
याचन्नापि महादिव्यमविचार्यैव भूभुजा
वेष्टयित्वा सशौश्चण्डौ ज्वालितस्तैलसेकिमैः
सो काम निर्जराभावाद् मृत्वा सर्वगिलामिधः
राक्षसोऽभूत, सच्चाहं तु स्मृत्वा वैरमिहागतः
तिरोहितः समग्रोऽपि पुर लोको मया तथा
सिंहं रूपं त्रिकुर्व्येष स गृहीतो नरेश्वरः ॥ 'द्वितीय सर्ग' ३४७-५२।

किन्तु न मालूम किस कारण राक्षस के हृदय में सात्विक भाव का उदय होता है और वह आनलदेव से पूछता है कि

किं दारिद्र सु दुष्ट कुष्ट तनयं। किं भूमि सत्रू हरं
किं वनिता च वियोग दैव विपदा निर्वासिता किं नरं
किं जन मानस रुष्ट जुष्ट जुगता किं आपति संगुरं
किं माता म्रित रंग-भंग सरसा आलिंगिता सुन्दरी। १। ५४३

अन्त में आनलदेव पर प्रसन्न होकर ढुंढा अजमेर का राज्य उन्हें दे देता है और स्वयं आकाश-मार्ग से उड़कर गंगा की ओर चला जाता है।

कथाकोश में सुमित्र एक ऐसे ही उजाड़ नगर में पहुँचता है। वह नगर भी एक राक्षस के कारण ही उजाड़ हो जाता है। नगर में केवल सिंह और सर्प ही दिखलाई पड़ते हैं। महल में भी कोई जीव नहीं दिखलाई पड़ता, केवल दो ऊँटनियाँ दिखलाई पड़ती हैं। वे ऊँटनियाँ भी वस्तुतः दो राजकुमारियाँ हैं जिन्हें नित्य वह राक्षस ऊँटनी के रूप में बदलकर चला जाता है और रात्रि में आने पर मन्त्राभिषिक्त कृष्णांजन के द्वारा उन्हें पुनः राजकुमारी बना देता है। उस नगर के उजाड़ होने और उन राजकुमारियों के उस रूप में होने की कहानी वहाँ विस्तार से दी हुई है। संक्षेप में कहानी यह है कि समुद्रनगर में एक सौदागर रहता था। उसके यहाँ एक बार एक तपस्वी आया। वह सौदागर की दो अत्यन्त सुन्दरी कन्याओं को देखकर उन पर मुग्ध हो गया और उन्हें प्राप्त करने के लिए उसने उस सौदागर से बाद में कहा कि इन लड़कियों के शरीर के लक्षण से पता चलता है कि तुम्हारे परिवार का शीघ्र ही इनके कारण नाश होने वाला है। सौदागर घबराया। अन्त में धूर्त तपस्वी ने ही उपाय बताया कि इन्हें गहने पहनाकर लकड़ी के सन्दूक में बन्द करके गंगा में बहा दो। सौदागर ने यही किया। उधर लौटकर तपस्वी ने अपने दो शिष्यों को सन्दूक लाने के लिए भेजा, किन्तु इसके पहले कि वे शिष्य वहाँ पहुँचे उस नगर के राजा सुभीम के हाथ वह सन्दूक लग गया। राजा ने यह समझकर कि इसमें अवश्य कुछ भेद है उन कुमारियों को तो अपने यहाँ रख लिया और सन्दूक में बन्दर भरकर उसी रूप में गंगा में छोड़ दिया। शिष्यों ने सन्दूक देखा और उसे गुरु के पास ले गए। शिष्यों को विदा करके गुरु ने एक एकान्त कमरे में कमरा भीतर से अच्छी तरह बन्द करने के बाद उस सन्दूक को प्रेमपूर्वक खोला। खोलते ही भूख से व्याकुल बन्दर महात्मा जी के ऊपर टूट पड़े और उन्हें मार डाला। मरने पर वही तपस्वी राक्षस के रूप में पैदा हुआ। उसे पता लग गया कि राजा सुभीम के कारण

उसकी मृत्यु हुई और पूर्व जन्म के वैर का स्मरण करके उसने उस राजा को तो मार ही डाला, साथ ही उन दो कुमारियों को छोड़कर नगर के अन्य सभी निवासियों को भी नष्ट कर दिया।

सुमित्र ने वहीं रखे हुए श्वेतांजन और कृष्णांजन के रहस्य को समझा और उन ऊँटनियों के नेत्रों में कृष्णांजन लगा दिया जिससे वे पुनः राजकुमारी हो गईं। उन राजकुमारियों की सहायता से अन्त में उस राक्षस को धोखा देकर वह वहाँ से भाग निकला। राक्षस ने पीछा किया, किन्तु राक्षसों को वश में करने का मन्त्र जानने वाले एक व्यक्ति की सहायता से उसने राक्षस को वश में कर लिया।

इस कहानी में 'उजाड़ नगर' के साथ-ही-साथ 'ढोंगी भिक्षु' इस अभिप्राय का भी उपयोग किया गया है। ढोंगी भिक्षु की जो कहानी ऊपर दी हुई है वैसी अनेक कहानियाँ भारतीय कथा-साहित्य में आई हुई हैं, लोक-कथाओं में तो उनकी भरमार है। जर्नल ऑफ़ अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी की चवालीसवीं जिल्द में ब्लूमफील्ड ने ढोंगी भिक्षु और भिक्षुणियों पर एक स्वतन्त्र निबन्ध ही लिखा है।

कथासरित्सागर में इसी प्रकार इन्दीवर सेन एक उजाड़ नगर में पहुँचता है और वहाँ के राक्षस को मारकर दो राजकुमारियों का उद्धार करता है।

पंचदण्ड छत्र प्रबन्ध के कथाकोश से ही मिलती-जुलती कहानी थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ दी हुई है। ऊँटनी के स्थान पर वहाँ महल में एक बिल्ली दिखाई पड़ती है और काले अंजन के लगा देने पर वह राजकुमारी के रूप में बदल जाती है।

इण्डियन ऐण्टीक्वैरी में आर० सी० टेम्पल ने 'पंजाब की लोककथा में' (फोकलोर ऑफ़ पंजाब) शीर्षक से पंजाब में प्रचलित अनेक कहानियाँ प्रकाशित की हैं। उसमें एक कहानी (जिल्द १०, पृ० २८८-३३) में नायक को कई बार इस प्रकार के उजाड़ नगर मिलते हैं। वे नगर भी किसी भूत, चुड़ैल अथवा राक्षस के कारण उजाड़ हो गए हैं। नायक प्रत्येक नगर के राक्षस या भूत को मारता है और पुनः नगर बसाकर वहाँ राजा बनता है। स्विनर्टन द्वारा संकलित 'पंजाब की रोमाण्टिक कहानियाँ' (रोमाण्टिक टेल्स ऑफ़ पंजाब, पृ० ८७), जे० जे० मेयर की हिन्दू कहानियाँ (हिन्दू टेल्स, पृ० २६) और पंचाख्यानोद्धार (रत्नपाल की कहानी) में नायक इसी प्रकार उजाड़ नगर में जाते और वहाँ के राक्षस, भूत आदि को मारकर या उन्हें प्रसन्न करके नगर को पुनः बसाते और वहाँ राज्य करते हैं।

जल की तलाश में जाना

किसी जंगल आदि में तृषाकुल होकर जल की खोज में जाना और वहाँ किसी अद्भुत घटना का घटित होना भारतीय साहित्य की अत्यन्त प्रचलित रूढ़ि है। कथा को आगे बढ़ाने वाले अभिप्राय के रूप में ही कहानियों में इसका उपयोग किया गया है। इसी से मिलता-जुलता दूसरा अभिप्राय भी कथाओं में प्रायः उपयुक्त होता है, वह है 'जंगल में मार्ग भूलना'। दोनों के कार्य और उद्देश्य प्रायः समान हैं, किन्तु पहला व्यापकता और उपयोगिता की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण है। किसी जलाशय में अथवा उसके निकट अलौकिक शक्तियों का निवास एक अत्यन्त प्रचलित लोक-विश्वास है, अतः वहाँ किसी अलौकिक अथवा अप्रत्याशित घटना का घटित होना आश्चर्यजनक नहीं है। किसी जलाशय के निकट स्नानादि के लिए आई सुन्दरियों से साक्षात्कार भी स्वाभाविक ही है। किसी जंगल में झील के किनारे किसी सुन्दरी से साक्षात्कार और प्रेम एक प्रचलित अभिप्राय ही बन गया है और रूढ़ि के रूप में कथा-साहित्य में प्रयुक्त होता आ रहा है। 'सलिलान्वेषण' के अभिप्राय के साथ भी यह अभिप्राय आ सकता है और स्वतन्त्र रूप में भी इसका उपयोग किया जा सकता है। अधिकांश स्थानों पर स्वतन्त्र रूप में ही इसका उपयोग किया गया है।

तृषाकुल होकर जल की खोज में जाने के अभिप्राय का कई रूपों में कथाओं में उपयोग किया गया है। भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की दृष्टि से भिन्न-भिन्न रूपों में इसका उपयोग हुआ है। उसके मुख्य रूप ये हैं—

१. जल की तलाश में जाते समय किसी जलाशय के निकट अलौकिक व्यक्तियों से भेंट और कार्य-सिद्धि में उनकी सहायता।

२. नायक का नायिका को छोड़कर जल की खोज में जाना और किसी असुर, शबर, भील आदि के द्वारा नायिका-हरण।

३. किसी सुन्दरी से भेंट और प्रेम।

४. किसी यक्ष, राक्षस आदि से भेंट और किसी दुःखद घटना का घटित होना।

रासो में इसका प्रथम रूप मिलता है। 'अथ वानवेध प्रस्ताव लिष्यते' नामक सड़सठवें समय में कविचन्द पृथ्वीराज के बन्दी किये जाने का समाचार पाकर गज़नी जाता है। अनेक जंगलों के बीच से जाते हुए वह मार्ग भूलने पर एक अत्यन्त भीषण और जनशून्य जंगल में पहुँच जाता है; रात हो जाती है। तीन दिन तक लगातार बिना भोजन और जल-मार्ग द्वारा चलने से थककर

वह बीच जंगल में ही रात में सो जाता है—

दिवस तीन पंथह वहिग गनी न अह निसि संझ।

षट दिन नयन अनुभझ भय थकि सूतौ बन मंझ। ६७। १०८

थोड़ी देर बाद प्यास मालूम होती है और तृषाकुल होकर चन्द जल की खोज में निकल पड़ता है। थोड़ी दूर जाने पर एक जलाशय मिलता है और वहाँ एक सिंह दिखलाई पड़ता है—

तिहि पिपास लग्गिय बहुल घव ढुंढन बन जग्गि।

तहाँ सुइक्क बढ़ तट निकट कलयल सिंघ सुलग्गि। ६७। ११७

उस सिंह के पास ही एक तरुणी दिखलाई पड़ती है—

तिन सिंघह मझझह तरुनि। कह जंपिय संत।

मनहु अम्म मझझे अगिनि झलहलंत दीसंत ॥ ६७। ११८

वस्तुतः वह सिंह भगवती का वाहन है और वह तरुणी स्वयं भगवती। चन्द के वहाँ आने का कारण और उसका लक्ष्य आदि जानकर भगवती अपने अंचल से एक चीर फाड़कर चन्द के माथे पर बाँध देती हैं।

चरच्चि चीर अंचल धजा दिय सिर बन्दन पट्ट।

और उस चीर पट को पाकर चन्द के सभी भवताप मिट जाते हैं और वह तुरन्त गज़नी पहुँच जाता है—

सिर पट्टर भट्टर सुभट भव मैं भग्गौ तास।

परम तत रत्तौ वघट नयर सपत्तौ तास ॥

इहि विधि पत्तौ गज्जनै जहं गोरी सुलतान।६७।१४०, १४१

इस अभिप्राय का कई स्थानों पर प्रयोग हुआ है। कथासरित्सागर में नरवाहनदत्त इसी प्रकार तृषाकुल होकर जल की खोज में बहुत दूर एक महावन में पहुँच जाते हैं। वहाँ उन्हें रक्ताम्बुज से भरा हुआ एक दिव्य जलाशय मिलता है, जिसके किनारे उन्हें दिव्य वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए चार दिव्य पुरुष दिखलाई पड़ते हैं—

रथारूढ़स्तृषाक्रान्तः सलिलान्वेषणक्रमात।

वत्सेश्वरात्मजो दूरं विवेशान्यन्महावनम् ॥

तत्रोत्फुल्ल हिरण्याब्जं दिव्यं प्राय महत्सरः

× × ×

तदैक देशे चतुरो दूराद्दैवत पूरुषान।

दिव्याकृतीन दिव्य वस्त्रान्दिव्याभरण भूषितान।५४।६-१२।

उन दिव्य पुरुषों की सहायता से नरवाहनदत्त को विष्णु का दर्शन होता है

और उनकी कृपा से अनेक कार्यों की सिद्धि में सहायता मिलती है।

दूसरे रूप के उदाहरण कथासरित्सागर की कई कहानियों में मिलेंगे। जैसा कि ब्लूमफ़ील्ड ने लिखा है कि जब भी सोमदेव दो व्यक्तियों या दो दलों को वियुक्त करना चाहते हैं तो उनमें से एक को जल की तलाश में भेज देते हैं। श्रीदत्त और मृगांकवती की कहानी (दसवीं तरंग) में मृगांकवती जंगल में प्यास से व्याकुल हो उठती है। श्रीदत्त उसे छोड़कर पानी की तलाश में जाता है और जल ढूँढ़ने में ही सूर्यास्त हो जाता है—

तत्कालं चास्य तत्रैव सा मृगांकवती प्रिया।
त्रासायास परिश्रान्ता तृषार्त्ता समपद्यत ॥
स्थापयित्वा च तां तत्र गत्वा दूरमितस्ततः।
जलमान्विष्यतश्चास्य सवितास्तमुपाययौ ॥

जल तो उसे मिल जाता है, किन्तु मार्ग भूल जाने के कारण वह अपनी प्रिया के पास नहीं पहुँच पाता, वहीं रात बीत जाती है; प्रातःकाल उस स्थान पर पहुँचने पर वह मृगांकवती को वहाँ नहीं पाता। यहाँ से कहानी दूसरी दिशा में बढ़ती है और उसमें गति आ जाती है। मृगांकवती की खोज में श्रीदत्त को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

दूसरा उदाहरण (कथा० ५६।२१) चन्द्रस्वामिन की कहानी में है जिसमें चन्द्रस्वामिन अपने पुत्र महीपाल और पुत्री चन्द्रावती को छोड़कर जल की तलाश में जाता है—

तस्यां तृषाभिभूतौ तौ स्थापयित्वा स दारकौ।
चन्द्रस्वामी ययौ दूरमन्वेष्टुं वारि तत्कृते।

थोड़ी ही दूर जाने पर उसे एक शबर राजा मिलता है जो उसे बलि देने के लिए पकड़ ले जाता है।

तीसरे रूप के उदाहरण कथाकोश और कथासरित्सागर की कई कहानियों में मिलते हैं। कथाकोश में ऋषिदत्त की कहानी में ऋषिदत्त के कुछ सैनिक जल की खोज में जाते हैं और वहाँ जलाशय के निकट एक अलौकिक रूपवाली सुन्दरी को देखते हैं। सैनिकों को देखकर वह सुन्दरी अदृश्य हो जाती है। राजा को सूचना दी जाती है। युद्ध जीतकर लौटते समय राजा भी उस जलाशय के निकट उस सुन्दरी को देखते हैं। थोड़ी देर बाद ही राजा के सैनिक भी वहाँ पहुँच जाते हैं और वह सुन्दरी पुनः अदृश्य हो जाती है। प्रेमाभिभूत होकर राजा उसे ढूँढ़ने लगते हैं और वहीं से कथा दूसरी ओर मुड़ जाती है।

कथासरित्सागर (५२,६६) में राजा हरिवर जल की खोज में जाते समय अनंगप्रभा के मधुर गीत सुनकर उसके पास जाते हैं। दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं और अनंगप्रभा अपने पति जीवदत्त को सोया ही छोड़कर हरिवर के साथ भाग जाती है।

चौथे प्रकार का सबसे सुन्दर उदाहरण पार्श्वनाथ चरित (६,१०४८) में सनत्कुमार की कहानी में मिलता है। सनत्कुमार पिपासाकुल होकर जल के लिए इधर-उधर घूमते हुए थककर सप्तच्छद वृक्ष के नीचे सो जाते हैं।

ततः कुमारो नीरार्थं परिभ्रामान्नितस्ततः।
क्वाऽपि नाऽप जलं तायादथाऽभूदाकुलो भृशम् ॥
दूरे सप्तच्छदं दृष्ट्वा हृष्टस्तमाभिधावितः।
कथंचित प्राप्य तस्याऽधः पयात् भ्रमितेद्वरः ।६।१०४८-४६

उस वृक्ष के नीचे निवास करने वाला एक यक्ष उन्हें जल छिड़ककर चैतन्य करता है और सनत्कुमार के आग्रह से एक जलाशय के पास ले जाता है। जलाशय के पास एक दूसरे यक्ष से भेंट हो जाती है, जो राजा को अपना पूर्वजन्म का वैरी समझकर उन पर आक्रमण कर देता है—

कृतस्नानश्च तत्राऽसौ कुमारः पूर्व वैरिणा।
दृष्टोऽसिताख्य यक्षेण युद्धं च समभूत तयोः । ६। १०५५।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस अभिप्राय का कथाओं में विभिन्न रूपों में प्रयोग होता है। अकेले इस अभिप्राय के आधार पर ही कोई कहानी नहीं खड़ी की जाती। इसके उपयोग से कथा आगे बढ़ जाती है और उसकी दिशा बदल जाती है। कहानीकार को अनेक नई घटनाओं के आयोजन का अवसर मिलता है। कथानक रूढ़ि बन गया है और प्रत्येक कथा-संग्रह में इसके कुछ-न-कुछ उदाहरण मिल जायँगे। उदाहरण के लिए जे० जे० मेयर द्वारा संकलित हिन्दू कहानियाँ (हिन्दू टेल्स, पृ० २४, ३३, ४२, ६८) समरादित्य, संक्षेप (५, २८३) पार्कर द्वारा संकलित 'सीलोन की ग्रामीण लोक-कथाएँ'[१] (भाग १, ८१-८६) और फ्रीयर की 'ओल्ड डेकन डेज़' पुस्तक में इस रूढ़ि के रूप मिलेंगे।

इस सम्बन्ध में एक विशेष बात ध्यान देने की यह है कि इस अभिप्राय के साथ-ही-साथ प्रायः कुछ अन्य अभिप्राय भी जुड़े रहते हैं। उदाहरण के लिए रासो की कहानी में ही इस अभिप्राय के साथ-ही-साथ 'जंगल में मार्ग भूलना' इस अभिप्राय का भी उपयोग किया गया है। श्रीदत्त और मृगांकवती

१. विलेज फोक टेल्स ऑफ़ सीलोन।

के उदाहरण में श्रीदत्त भी मार्ग भूल जाने के कारण ही मृगांकवती के पास नहीं पहुँच पाता। कभी-कभी इसके साथ पहली की कोटि के प्रश्नोत्तर का अभिप्राय भी आ जाता है। उदाहरणस्वरूप हेमविजय के कथारत्नाकर (कहानी २१) में 'पहेली समझना' इस रूढ़ि के आधार रूप में इस अभिप्राय का प्रयोग किया गया है। महाभारत में पाण्डवों का जल की तलाश में जाना और यक्ष के प्रश्नों का ठीक उत्तर न दे सकने के कारण मूर्छित किया जाना, इसका सबसे पुराना और सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। अन्त में युधिष्ठिर यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देकर शेष भाइयों की जीवन-रक्षा करते हैं।

ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

१. उदयन कथा : देवेन्द्र
२. कथासरित्सागर : सोमदेव
३. करकंड चरिउ : मुनि कनकामर
४. कादम्बरी : बाणभट्ट
५. कोशोत्सव स्मारक संग्रह : सं० महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
६. जसहर चरिउ : पुष्पदंत
७. जातक
८. तन्त्रसार
९. दशकुमार चरित : दण्डी
१०. नवसाहसांक चरित : पद्मगुप्त परिमल
११. पद्मावत : जायसी
१२. परिशिष्ट पर्वन : हेमचन्द्राचार्य, जैकोबी द्वारा सम्पादित
१३. प्रबन्ध चिन्तामणि : टानी द्वारा अनूदित
१४. प्रबन्धकोश : टानी का अनुवाद
१५. पार्श्वनाथ चरित : भवदेव सूरि
१६. पुरातन प्रबन्ध संग्रह : सं० मुनि जिन विजय
१७. भारत की चित्रकला : रायकृष्णदास
१८. महाभारत
१९. विक्रमांकदेव चरित : बिल्हण
२०. वीर-काव्य : डॉ० उदयनारायण तिवारी
२१. रत्नावली : श्रीहर्ष
२२. लीलावई कहा : कौतूहल सं० डॉ० उपाध्ये
२३. समरादित्य संक्षेप

२४. समराइच्चकहा : हरिभद्र
२५. सन्देश राशक : अद्दहमाण (अब्दुलरहमान)
२६. स्वप्न दर्शन : राजाराम शास्त्री
२७. हम्मीर महाकाव्य : नयचन्द सूरि
२८. हर्षचरित : बाणभट्ट
२९. हितोपदेश
३०. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
३१. हिन्दू भारत का उत्कर्ष : चिन्तामणि विनायक वैद्य

पत्र-पत्रिकाएँ

१. राजस्थान भारती
२. राजस्थानी
३. विशाल भारत

अंग्रेजी

1. A History of Sanskrit Literature : A. B. Keith.
2. A History of Sanskrit Literature : S. N. Das Gupta and S. K. De.
3. Baital Pachisi : Osterly.
4. Book of Sindibad : Clouston.
5. Comparative Religion : F. B. Jevons.
6. Custom and Myth : Andrew Lang.
7. Das Panchatantra : Hartel.
8. Demnology and Devil Lore : M. D. Conway.
9. Dictionary of World Literature : Shiple.
10. Dictionary of Kashmiri Verbs : J. H. Knowles.
11. Dravadian Nights : N. Sastri.
12. Encyclopaedia of Religion and Ethics : Hastings.
13. Essays on Sanskrit Literature : Wilson.
14. Folk Literature of Bengal : D. C. Sen.
15. Folk Lore of Bombay : Enthoven.
16. Folk Lore of Santal Paraganas : Bompas.
17. Folk Tales of Hindustan : Chilli, Shaik.
18. Hatim's Tales : Stein and Grierson.
19. Hindu Tales : Mayor.
20. History of Fiction : Dunlop John.
21. Indian Fairy Tales : Jacobi.

22. Indian Night's Entertainment : Swinerton.
23 Kings of Kashmir : R. C. Datta.
24. Legend of Perseus : Hartland.
25. Life and Stories of Jain Saviour Parswanath : M. Bloomfield.
26. Myths of Middle India : Elwin Verriar.
27. Old Deccan Days : Frere.
28. Popular Religion and Folk Lore of India : W. Crook.
29. Popular Tales and Fiction : Clouston.
30. Popular Tales of Norse : G. W. Dasient.
31. Primitive Art : Adam Leonard.
32. Romantic Tales of Punjab : Swinerton.
33. Studies in Honour of Maurice Bloomfield.
34. The Childhood of Fiction : J. A. Macculloch.
35. The Golden Bough : G. C. Frazer.
36. The Ocean of Story : C. H. Towney.
37. The Ocean of Story : Towny and Penzer.
38. The Science of Fairy Tales : E. S. Hartland.
39. Tribes and Casts of the Central Provinces Vol. 2 : Russel.
40. Wide Awake Stories : F. A. Steel and R. C. Temple.
41. Zigzag Journies of India : Butter Worth.

Journals and Periodicals.

1. American Journal of Philosophy.
2. American Journal of Philosophy.
3. Folk Lore Journal.
4. Folk Lore Society.
5. Indian Antiquery.
6. Journal of American Oriental Society.
7. Journal of Anthropological Institute, London.
8. Journal of Anthropoligical Society, Bombay.
9. Journal of Bihar Orissa Research Society.
10. Journal of Royal Asiatic Society.
11. Proceedings of American Philosophical Society, Vol. 52.
12. Scientific Monthly.
13. Transaction of American Philosophical Association.